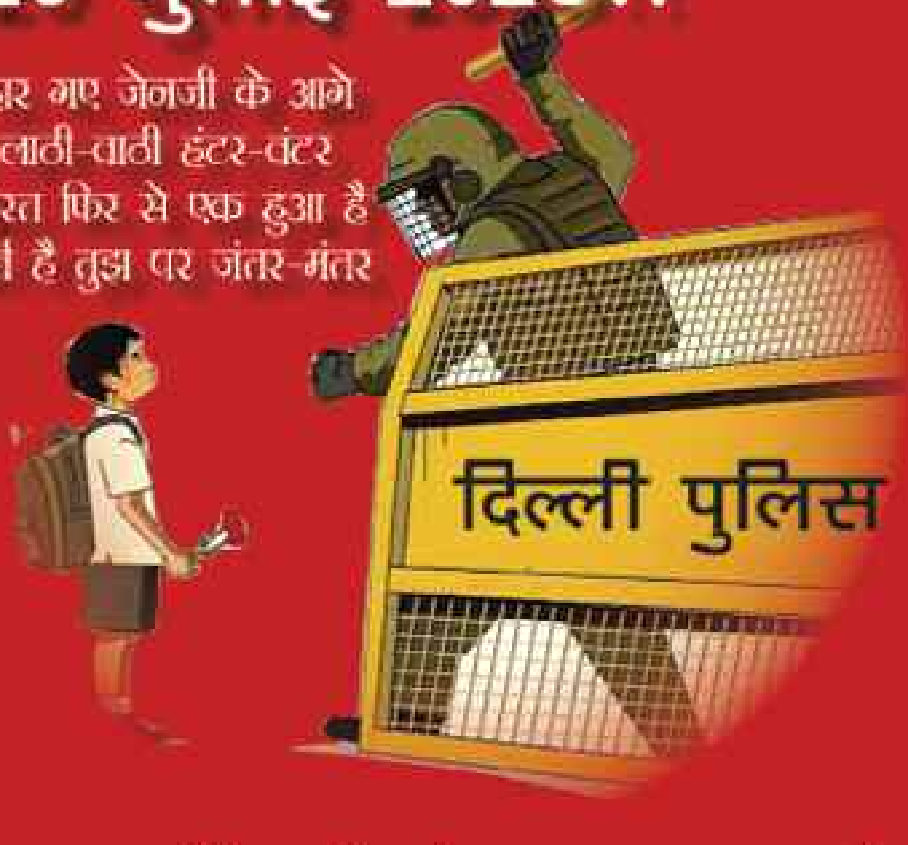
गांधी-मार्ग

जुलाई–अगस्त 2026

20 जुलाई 2026!!

हार गए जेनजी के आगे
लाठी-वाठी हंटर-वंटर
भारत फिर से एक हुआ है
गर्व है तुझ पर जंतर-मंतर



• महात्मा गांधी • नसीरुद्दीन शाह • अतुल कुलकर्णी
• विशाल भारद्वाज • प्रेरणा • निधि • नेहा अहलूवालिया
• प्रताप भानु मेहता • धीरेंद्र के. झा • आर. एस. शर्मा

गांधी इतिहास नहीं
वर्तमान और भविष्य भी हैं...



वर्तमान को समझिए... भविष्य को बनाइए!

*

गांधी शांति प्रतिष्ठान से जुड़िए.

हमारे केंद्र :

○भागलपुर ○जोधपुर ○पटना ○भुवनेश्वर ○जमशेदपुर ○जम्मू ○मुजफ्फरपुर ○इंदौर ○कौसानी ○कानपुर ○भद्रक ○राउरकेला ○बैंगलूरु ○धारवाड़ ○कोचिन ○कालिकट ○त्रिवेंद्रम ○त्रिशूर ○अहमदाबाद.

गांधी-मार्ग

अहिंसा संस्कृति का द्वैमासिक

वर्ष 68, अंक 4, जुलाई-अगस्त 2026



गांधी शांति प्रतिष्ठान

आवरण : देश ऐसे भी जागता है, किसी को गुमान नहीं था! जब सब डर कर सो रहे थे, तब ये लोग जाग रहे थे. जिसे जेनजी कहा जा रहा है, वह सीधे आमने-सामने उतर आया और वह भी राजधानी दिल्ली में. जंतर-मंतर पर जो भारत उन दिनों में उतर आया था, भारत वैसा भी है यह हम भूल ही गए थे. आवरण पर हमने **लता हया** की जिन पंक्तियों को दर्ज किया है, वह 20 जुलाई 2026 का सबसे सटीक विवरण है. गांधी-प्रेरित युवकों के **राष्ट्रीय युवा संगठन** ने भी जंतर-मंतर पर अपने जेनजी का होने का जैसा परिचय दिया, वह सब हमने इस अंक में समेटा है. इस अंक की सज्जा **योगराज सिंह** ने की है.

वार्षिक शुल्क : भारत में 200 रुपये, दो वर्ष के 350 रुपये, आजीवन-1000 रुपये (व्यक्तिगत), 2000 रुपये (संस्थागत), एक प्रति का मूल्य 20 रुपये, डाक खर्च निःशुल्क, दो माह तक न मिलने पर शिकायत लिखें. अपना शुल्क चेक, बैंक ड्राफ्ट, मनी ऑर्डर द्वारा 'गांधी शांति प्रतिष्ठान' के नाम भेजें. ऑनलाइन भुगतान के लिए केनरा बैंक खाता नं. 0158101030392 IFSC CODE: CNRB0000158

संपादन : कुमार प्रशांत **प्रसार** : भगवान सिंह

गांधी शांति प्रतिष्ठान, 223 दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002 के लिए अशोक कुमार द्वारा प्रकाशित

फोन : 011-2323 7491, 2323 7493, Email: gmhindi@gmail.com

मुद्रक : नीता प्रेस, 3574- गली जटवारा, नियर सबलोक क्लीनिक, दरियागंज, दिल्ली-110002, फोन नं. 8800646548

शुरू में...

मैं, जो अब उम्र की 76वीं सीढ़ी पार करने जा रहा हूं, नहीं जानता हूं कि यह जेनजी क्या है! अगर यह गणित का वैसा ही अर्थहीन खेल है जैसा इसे बतलाया जा रहा है, तो मुझे इसमें कोई दिलचस्पी नहीं है. कुंडली बांचने वाले, भविष्य बतलाने वाले, सितारों व ग्रहों का हिसाब लगाकर मनुष्य का भूत-भविष्य तय करने वाले खेल मुझे खेल से ज्यादा कभी कुछ लगा ही नहीं. इसलिए कौन, कौन से वर्ष-खंड में पैदा हुआ है, इससे उसका जेनरेशन तय करने वाला खेल भी मुझे न समझता है, न मैं उसे समझना चाहता हूं.

मैं उम्र का फर्क समझता हूं. मैं ताजादम शरीर की कीमत जानता व मानता हूं. मैं जानता हूं और मानता हूं कि तुम, जो मुझसे 50-60 वर्ष बाद पैदा हुए हो, मुझसे ज्यादा दौड़ सकते हो, हवा में उड़ सकते हो, शिखर से छलांग मार सकते हो, बादलों में जा सकते हो, चांद-सितारे छू सकते हो. यह सब कभी मैंने भी किया है; आज भी ऐसा करने की हसरत रखता हूं. लेकिन कर नहीं सकता, क्योंकि हमारा हो कि तुम्हारा, यह शरीर है तो एक मशीन; और हर मशीन की तरह इसकी एक एक्सपायरी डेट भी है. कारखानों की मशीनों की एक्सपायरी डेट उस पर लिखी आती है. यहां मजा यह है कि हमारी एक्सपायरी डेट है तो जरूर लेकिन हममें से किसी को उसका पता नहीं है. इसलिए फिर हमारे हाथ में बचा रहता है **उमंग से भरा मन, संकल्प से भरा दिल और सपनों से भरी आंखें!** अगर जेनजी से तुम्हारा मतलब इन सबसे है तो मैं तुम सबके बराबर और तुम सबके साथ जेनजी हूं.

मैं उस महात्मा गांधी से प्रेरित हूं जिसने 80 साल की उम्र तक – यानी गोली से मारे जाने तक – अपने सपनों के हर हत्यारे से अथक लड़ाई की; और जब मारा गया तो भी इसी तरह मारा गया कि सारी दुनिया ने सर झुका कर यही कहा कि जीना भी ऐसा ही हो, मरना भी ऐसा ही. अभी-अभी, तुम्हारे आसपास से ही एक आवाज उठी जो मैंने सुनी. वह कह रही थीः जेनजी यानी जेनरेशन गांधी! यदि ऐसा है तो मैं तुम्हारे साथ हूं, मुझे साथ ले लो!

मैं जंतर-मंतर पर लगातार था और तुम लोगों को खुलते-खिलते, रचते-मिटाते, नाचते-गाते, अपने सपनों को साझा करते देख रहा था. मैं तुम्हारी गति भी देख रहा था, तुम्हारी कल्पनाशीलता भी; मैं अनशन पर बैठी तुम्हारी दृढ़ता भी देख रहा था और तुम्हारा संयम भी. मैं इन सबको जोड़कर कहूं तो कहूंगा कि मैं नया भारत देख रहा था. इस भारत में कुछ फिसलन भी थी,

लड़खड़ाहट भी; कुछ बेढ़बपना भी था, कुछ अनगढ़ता भी! मैं भी तो इन सबके साथ ही जीता-बढ़ता आया हूं. यह हमारे साथ चलने वाली परछाईं है और मुझे अपनी परछाई कभी भी बोझ नहीं लगती है. तुम सब मुझे मेरे जैसे ही लगते हो. हम सबको समझना इतना ही है कि जो अनावश्यक है, अभद्र है, असंस्कृत है, कुरूप है, हमें ऊपर उठाता नहीं, नीचे खींचता है, उन सबसे मुक्ति पानी है. जैसे सांप केंचुल छोड़ता है न, वैसे ही इन सबको हमें छोड़ते चलना है. यह आसान नहीं है लेकिन इसके बिना हमारा कल्याण भी नहीं है. इसलिए बोलने-लिखने-गाने-नारे लगाने तथा संवाद करने में हर फिसलन से हमें बचना है.

अब हम जंतर-मंतर से बाहर आते हैं. वहां तुम सबने क्या-क्या किया, वह गाथा इतिहास दर्ज कर चुका है. वह उसे दोहराता भी रहेगा. वह लोकतंत्र का स्वर्णिम अध्याय है. तुम्हारी बोली से किसी सत्ता का अहंकार टूट गया है. वह औचक देख रही है कि यह आंधी आई कहां से; और वह किसी शिकारी कुत्ते-सी सूंघ रही है कि यह किधर जा रही है. जब सत्ता-प्रा. प्ति अंतिम सत्य बन जाती है तब अहंकार बारूद का काम करता है; और यह बारूद फटेगा ही! धर्मेंद्र प्रधान का इस्तीफा एक आदमी का इस्तीफा नहीं है, सत्ता के अहंकार के टूटने का धमाका है. वह टूटा यह अच्छा हुआ. लेकिन तुम याद रखना कि चोट खाया सांप ज्यादा खतरनाक होता है. राष्ट्र जब भीड़ में बदल दिया जाता है तब वह हत्यारा हो उठता है जिसे राष्ट्रवाद का नाम दिया जाता है. देशप्रेम व राष्ट्रवाद दो सर्वथा भिन्न भाव ही नहीं हैं बल्कि एक-दूसरे के विरोधी भाव भी हैं.

इसलिए सुनो जेनजी, अब तुम्हें तोड़ने के सारे संभव तीर चलाए जाएंगे, सारे हथकंडे अपनाए जाएंगे. तुम्हारे साथी खरीदे-बेंचे जाएंगे; तुम्हारे सामने जेनजी की एक नई जमात खड़ी कर दी जाएगी. तुम आसानी से देशभर में न घूम पाओगे, न जी पाओगे. हर जगह तुम्हारे सामने एक जंतर-मंतर होगा जो सवाल करेगा व जवाब भी पूछेगा. इसलिए निजी जीवन में साफ व संयमित रहो. एक-दूसरे से जितना संभव हो, संवाद बनाओ. अपने बीच की खाइयां पाटो. याद रखो कि प्रतिवाद में सारा कुछ नकारात्मक चल भी जाता है; परिवर्तन का आंदोलन नकारात्मक भी, सकारात्मक भी, रचनात्मक भी और दूरगामी भी– ऐसे सारे तत्वों का एक पुंज होता है. हमें वह पुंज तैयार करना है. धर्मेंद्र प्रधान का इस्तीफा हुआ; धर्मेंद्र प्रधानों के इस्तीफे होते भी रहेंगे. लेकिन तंत्र पर लोक की – जेनजी की! – पकड़ कैसे बने व बनी रहे, इसका जवाब हमें खोजना है, सिद्ध करना है. अगर हम यह कर सके तो

दुनिया भर का लोकतंत्र हमारा ऋणी रहेगा.

क्यूबा के अमर क्रांतिकारी चे ग्वुवेएरा, जिसकी तस्वीर तुम्हारे टी-शर्टों पर मैं देखता हूं, वे जब भारत आए और गांधी को थोड़ा जाना-समझा तो राजघाट जाकर लिखा कि क्रांति का एक तरीका यह भी है, यह तो हम जानते ही नहीं थे! इतिहास तुम्हें ऐसा कहने का अवसर नहीं देगा, क्योंकि तुम चे के बहुत-बहुत बाद पैदा हुए हो. तुम्हारे पास जानकारियों की अत्यंत कुशल व व्यापक तकनीक है. इसलिए हमें विचार-संपन्न होना होगा. दूसरी विपन्नताएं चल भी जाएंगी, विचारों व विकल्पों की विपन्नता नहीं चलेगी.

जब तुम जंतर-मंतर से निकल कर अपने घरों में पहुंचोगे तो पाओगे कि अपना घर भी धर्मेंद्र प्रधानों से भरा है. हमें घर-घर में उनका मुकाबला करना है. वहां जेनजी है ही नहीं. गांधी ने धुर 1948 में कहा था न कि मुझे अब जो लड़ाई लड़नी है वह साम्राज्यवाद से लड़ी लड़ाई से भी ज्यादा दुर्धर्ष होगी, क्योंकि यह अपनों से है. तुम्हें भी अपने हर घर में, हर कमरे में यह लड़ाई लड़नी होगी. इसके बिना सफलता होगी नहीं, टिकेगी नहीं. इसलिए घर में फैली व फैलाई जा रही हर संकीर्णता से मुखर होकर लड़ो- सत्याग्रह करो!

घर से बाहर आओगे तो समझ सकोगे कि पिछले कोई पंद्रह सालों में इस सरकार ने योजनापूर्वक भारतीय राष्ट्र की तमाम सांस्कृतिक-शैक्षणिक-सामाजिक-बौद्धिक व्यवस्था में उसी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को ठूंस-ठूंस कर भर दिया है, जो नैतिक-सांस्कृतिक-सामाजिक-शैक्षणिक दृष्टि से देश के सबसे विपन्न लोगों का हिंसक जमावड़ा है. इनसे कदम-कदम पर, हर स्तर पर लड़ना होगा. हमें सीखना होगा कि गांधी ने इन्हें कैसे भारतीय समाज के चित्त से करीब-करीब बाहर ही कर दिया था. इसी बौखलाहट में इन्होंने उनकी हत्या की थी. इसलिए इनसे अंतिम लड़ाई हम पर उधार है.

नीट व दूसरी परीक्षाओं का पेपर लीक किसी चूक की वजह से नहीं हुआ है. जब सारा देश एक धंधे में बदल दिया जाता है तब हर कुछ बिकता है– परीक्षाएं भी, पेपर भी, राम मंदिर व दूसरे तमाम धर्मों के प्रतीक-स्थलों का चढ़ावा भी, नौकरियां भी, रोजगार भी, न्याय भी, सपने भी! सोचो न, जब सरकार ही बिकाऊ विधायकों व सांसदों से बनाने का फैशन चलाया गया है, तब क्या है जो बाजार में नहीं है, बिकाऊ नहीं है?

तो लड़ाई यहां है जेनजी! लड़ोगे न? जो नहीं लड़ेगा वह गणित से भले जेनजी कहलाए, होगा वह कायर! तो जेन का और जेन जी में से चुनना है तुम्हें!

*

रिपोर्ताज

जंतर-मंतर पर रात-दिन

○ प्रेरणा



सोनम वांगचुक ने 20 जुलाई को 'संसद चलो'! का आह्वान किया था. जंतर-मंतर के हुजूम का आकलन करने आई राष्ट्रीय युवा संगठन की टीम ने गांधी शांति प्रतिष्ठान में बैठ कर आगे की योजना बनाई और तय किया कि 20 जुलाई तक हम इस आंदोलन के साथ हैं और इनके साथ ही जंतर-मंतर पर रहेंगे. आशंका थी कि यदि 20 जुलाई को ही यहां पहुंचने की योजना बनाएंगे तो कहीं भी अंटक जा सकते हैं– ट्रेनें रद्द हो सकती हैं, मेट्रो बंद कर दी जा सकती है, दिल्ली की नाकेबंदी की जा सकती है या पुलिस रास्ते में गिरफ्तार कर सकती है. इसलिए हमने तय किया कि हम सब 17 जुलाई को ही जंतर-मंतर पहुंच जाएंगे और वहीं धरना-स्थल पर दूसरे युवाओं के साथ रात-दिन रहेंगे. रायुसं अपने जन्म के साथ हमेशा ही ऐसी पहल करता रहा है- विचार-संगठन-रचना-संघर्ष की संपूर्ण क्रांति की रणनीति हमारा मार्गदर्शन करती रही है... तो जो तय किया था वही करने हम 17 जुलाई से जंतर-मंतर पर आ डटे...

क्रॉकोच जनता पार्टी के ऑनलाइन मजाक ने ऐसा गंभीर मोड़ ले लिया कि सभी दंग रह गए! शक-शंका करने वालों की कमी न कभी रही है, न इस पहल के संदर्भ में ही थी. कॉक्रोचों के आह्वान पर जब नौजवान सड़कों पर उतरे तो भी उनकी नीयत व नियति पर शंका-ही-शंका थी. ऐसे उभारों के पुराने अनुभव ऐसे तीखे थे कि कहीं एक हिचक हमारे बीच भी थी. लेकिन विनोबा की यह बात अनमोल है कि जीने के लिए जैसे सांस की जरूरत होती है, वैसे ही सार्वजनिक जीवन में विश्वास की जरूरत होती है. सांस के बिना जीवन नहीं, विश्वास के बिना क्रांति नहीं. इसलिए शक-शंका के सारे दार्शनिकों को परे कर, हम मोर्चे पर आ पहुंचे.

पृष्ठभूमि यह थी कि महाराष्ट्र के प्रशांत नागोसे, मध्यप्रदेश के सचिन, ओडिशा के डॉ. **बिस्वजीत** के साथ मैं 8-9 जुलाई को ही दिल्ली आ पहुंचे थे. अपने मार्गदर्शक कुमार प्रशांत के साथ कई तरह की संभावनाओं पर बात करने के बाद हमने तय किया कि इस आयोजन का दो दिनों तक अध्ययन करने के बाद हम कोई पक्की राय बनाएंगे.

हम जंतर-मंतर पहुंचे. वहां युवाओं का जमावड़ा तो था ही लेकिन तब तक रंग गाढ़ा नहीं हुआ था. वहां हमें ऐसे लोग भी मिले, जो पर्दे के पीछे की कई बातें बताते थे. लेकिन पर्दे के सामने का नजारा पीछे की शंकाओं को बहुत हल्का करता था. सैकड़ों जमा थे, जमा होते जा रहे थे. जंतर-मंतर रूप भी बदल रहा था, रंग भी. प्रदर्शनकारियों की व्यवस्था और कु-व्यवस्था दोनों सामने थी. उपवास करने वाले ऐसे ताजादम नौजवानों से मिलना हुआ, जिन्होंने उपवास सिर्फ इसलिए शुरू कर दिया था कि सोनम वांगचुक उपवास पर आ बैठे थे. भोजन, पानी, दवाएं सब कुछ थीं वहां लेकिन यह भी साफ दिख रहा था कि यह लोगों के सहयोग के रूप में आ रहा है, किसी गुपचुप योजना के तरह नहीं.



थोड़ी टोह लेने के बाद मैंने व डॉ. बिस्वजीत ने मंच से अपनी बात भी रखी. हमने युवकों को अपना समर्थन दिया, सोनम वांगचुक को अपनी शुभकामनाएं दीं और कुछ आश्वस्त मन से गांधी शांति प्रतिष्ठान लौटे.

हमारा विचार-विनमय फिर चला और ऐसी राय बनी कि इस तरफ से मुंह फेरना ठीक नहीं होगा. यह सब चल ही रहा था कि सोनमजी ने ऐलान कर दिया कि 20 जुलाई को हम संसद की

तरफ कूच करेंगे - चलो संसद! पूरे माहौल में बिजली दौड़ गई!

कुमार प्रशांतजी भी जंतर-मंतर पहुंचे, सभी नेताओं से मिले, सोनमजी से मिले भी और उन्हें एक लिखित योजना भी दी. सोनमजी ने कहाः मैं आपसे बात करना चाहता हूं. अभी तो संभव नहीं है लेकिन मैं आपका लिखित सुझाव पढ़ूंगा और आपसे संपर्क करूंगा. उस दिन प्रशांतजी ने भी मंच से अपनी बात रखी.

युवाओं का उत्साह छलक भी रहा था और दृढ़ भी हो रहा था. हम महसूस कर पा रहे थे कि यह सब जो सामने आकार ले रहा है वह इतिहास की नई करवट है- दशकों में कभी एक बार ऐसा आलोड़न होता है. हमने तुरंत निर्णय लिया कि संगठन के चुने सदस्यों की एक टोली संयोजित कर हम 'चलो संसद' कार्यक्रम में शामिल होंगे. मध्यप्रदेश के युवा साथी **सचिन** ने तय किया कि अगली टोली के दिल्ली आने तक वह दिल्ली में ही रह जाएगा और दिल्ली में हो रहे घटनाक्रम से हम सबको अवगत कराता रहेगा.

हम अपनी टोली बनाकर फिर जंतर-मंतर लौटे, तब तक जंतर-मंतर को किसी मंतर ने पूरी तरह बदल दिया था. वह युवाशक्ति का चमकीला आईना बन चुका था. हमने तय किया ही था कि अब हम जंतर-मंतर पर ही रहेंगे जैसे सारे युवा रह रहे हैं. सचिन ने ऐसी युगत लगाई कि हमें जंतर-मंतर पर एक अच्छी जगह पर अपना तंबू डालने का मौका मिल गया. तंबू कह तो रही हूं लेकिन आप समझिए कि तंबू जैसा उसमें कुछ भी नहीं था. नीचे एक दरी थी और सर पर खुला आसमान था. आसमान जलता था तो हम जलते थे, आसमान रोता था तो हम और हमारी दरी गीली हो जाती थी. ऐसा हमारे साथ ही नहीं था, सबके साथ था. यहां-वहां से उमड़-उमड़ कर आते हजारों युवाओं के लिए दूसरा कुछ करना संभव भी नहीं था. जिन संगठनों के पास अधिक साथी व कुछ साधन भी थे वे भी किसी तरह अपनी कुछ व्यवस्था कर पाए थे.

राष्ट्रीय युवा संगठन के 25 साथियों ने इस कार्यक्रम के लिए अपने नाम दिए थे. खबर फैली तो कुछ और साथी भी जुड़ गए. अब हमारी संख्या 35 हो गई.

स्थानीय लोग समय-समय पर प्रदर्शनकारियों के लिए भोजन लेकर आते थे. कई बार वह सबके लिए पर्याप्त नहीं भी होता था. लेकिन सभी संयम के साथ निभा रहे थे. दिल्ली के हमारे साथी लगातार सहयोग कर रहे थे. **मधु** अपनी दोनों बहनों और भोजन के साथ आई. हमने साथ बैठकर खाना खाया.

यह बात बाद में पता चली कि एक जुनैद भाई हैं कि जो हर रात प्रदर्शनकारियों के लिए भोजन-नाश्ता आदि लेकर आते हैं. दिन भर जिन्हें भोजन नहीं मिल पाता, उनके लिए रात का जुनैद भाई का भोजन ही सहारा होता था.

रात में हमने सड़क पर अपनी-अपनी चादरें बिछाईं. भयानक गर्मी, उमस,

हैलोजन की तेज रोशनी और रात भर गूंजते गीतों-नारों के बीच नींद कहां आने वाली थी. कुछ देर करवटें बदलने के बाद मैं उठी और युवाओं के बीच टहलने निकल पड़ी.

मैदान में हर तरह के युवा थे. कहीं शिक्षा-नीति पर चर्चा चल रही थी, कहीं दो-चार लोगों के छोटे समूह बहस कर रहे थे, तो कहीं इंटरनेट से तथ्य खोजकर अपनी बातें रखी जा रही थीं. एक बड़ा समूह डफली के साथ रात भर गीत गा रहा था.

मैं भी ऐसी ही एक टोली में जा बैठी. वहां वामपंथी विचारधारा के कुछ युवा धर्मेंद्र प्रधान के इस्तीफे के बाद की रणनीति पर चर्चा कर रहे थे—परीक्षाएं कैसी हों, पेपर लीक रोकने के लिए क्या सावधानियां होनी चाहिए, दोषियों को कैसी



सजा मिले. मैंने भी वहां अपनी बात रखी. मैंने कहा कि यदि शिक्षा में सचमुच क्रांति लानी है तो हमें अपनी सोच गहरी व व्यापक करनी होगी. थोड़े संकोच के साथ मैंने गांधीजी की बुनियादी तालीम, नाई और वकील के श्रम के समान मूल्य, स्वदेशी और आमने-सामने की अर्थव्यवस्था आदि की बात रखी. मुझे ध्यान था कि यह किसी और की महफिल है. वहां के युवाओं की तुलना में मुझे अपनी उम्र का अहसास भी हो रहा था. इसलिए मैंने संक्षेप में ही बात की.

लेकिन मैंने देखा कि मेरी उस थोड़ी-सी बात ने चर्चा का रुख ही बदल दिया. मेरी कुछ बातों से सहमति बताने के साथ ही दूसरे युवाओं ने एआई, बड़े उद्योग, बदलती तकनीक, बेरोजगारी की समस्या और सरकारी नीतियों के संदर्भ में मुझसे अपनी असहमति भी व्यक्त की. मैं सुनती रही. युवाओं के तर्क, उनका आत्मविश्वास सब मुझे आनंदित कर रहा था. मैं बहस छेड़ना नहीं चाहती थी, विचारों का एक नया आयाम उनके सामने रखना भर चाहती थी.

फिर मैं उस समूह में पहुंची जहां सचिन अपने नए दोस्त **टैन** के साथ बैठे थे. टैन अपने को न लड़का मानते हैं, न लड़की. कुछ ही मिनटों की बातचीत में मैं उसकी समझ और तर्क की धार साफ समझ पा रही थी. टैन जैसे कई मेधावी युवा वहां थे.

यह सब चल ही रहा था कि मैंने देखा कि पिछली जिस टोली में मैंने गांधी-विचार की थोड़ी बात रखी थी, वहां से उठकर दो युवक मेरे पास आ गए. उन्होंने गांधीजी के विचारों पर फिर से बात शुरू की. चर्चा चली तो चल ही पड़ी. रात के तीन बज गए. अब तक मैं थक गई थी. मैंने कहाः अब बस करो, अब मैं सोने जा रही हूं. मैं उठ गई, वे बैठे रहे. दिल्ली की **श्रद्धा**, दिल्ली के बाहर से आए **युवराज** और **श्यामसुंदर** की चर्चा जारी रही. उनकी आवाज मुझ तक आती रही. दो घंटे बाद, सुबह 5 बजे मैं उठी, तो देखा कि वे तीनों अब भी उसी उत्साह से बातें कर रहे थे. यह सिलसिला सारे जंतर-मंतर पर रात-रात भर जारी रहता था. जिन्हें शंका रहती है कि आज के युवा विचार आदि का महत्व नहीं समझे हैं, उन सबको जंतर-मंतर पर एक रात बितानी चाहिए. सहमति-असहमति अपनी जगह है, विमर्श हो यह जरूरी है और जंतर-मंतर पर यह हो रहा था – खूब हो रहा था.

सुबह का मामला कठिन था. नित्य-क्रिया के लिए कौन, किधर जाए, कुछ सूझ नहीं रहा था. हम जंतर-मंतर से बाहर निकले. गांधी शांति प्रतिष्ठान ने अपने यहां नहाने आदि की सुविधा बना दी थी. हमने उसका सहारा लिया और करीब एक घंटे बाद, नहा-धो कर वापस लौटे. लेकिन अब सामने पुलिस आ खड़ी हुई! उसने हमें भीतर जाने से रोक दिया.

क्यों रोका? ...हम कुछ समझ पाते कि भीतर पुलिस की हरकत तेज हो गई. यह सोनमजी की गिरफ्तारी की हलचल थी. सुबह का समय था, सो सभी यहां-वहां निकल गए थे. वे ऐसे ही मौके की ताक में थे. सबको धक्का मारते, पूरी पुलिस लेकर वे मंच पर चढ़ आए और देखते-देखते लंबे अनशन से कमजोर सोनमजी को सफेद चादर में लपेटकर, उठा चले. उन्होंने मंच के करीब ही एंबुलेंस लगा रखी थी. उनको एंबुलेंस में डाला और भाग चले! यह सब-कुछ इतनी जल्दी में हुआ कि सब हैरान रह गए.

हम कुछ देर गेट के बाहर खड़े रहे, फिर हम जोर-जोर से नारे लगाने लगेः 'हमें भीतर जाने दो... जाने दो'. पुलिस इस नए हंगामे से सकते में आ गई, सीजेपी के कार्यकर्ताओं ने भी हमारी आवाज सुनी, तो सब पीछे हटे. हम भी और कई दूसरे लोग भी भीतर आ गए. अंदर पहुंचते ही हम भी बाकी साथियों के साथ गिरफ्तारी के विरोध में प्रदर्शन में शामिल हो गए. यह सारा कुछ दो-तीन घंटे चला.

जब हम अपने टेंट में लौटे, तब तक दोपहर हो चुकी थी. सरकार ने सोनमजी को गिरफ्तार कर प्रदर्शनकारियों को हक्का-बक्का करना चाहा था, लेकिन उसे कहां पता था कि सत्ता की चालबाजी व युवाओं के संकल्प के बीच कोई मुकाबला हो ही नहीं सकता है. गिरफ्तारी की खबर फैली कि सारा माहौल बदल गया! जो जहां था वहीं से जंतर-मंतर की तरफ चल पड़ा. क्या युवा, क्या नागरिक, क्या लड़कियां, क्या उम्रदराज सब थे, सब आते ही जा रहे थे. तांता लगा था. दिन भर गीत गूंजते रहे, नारे लगते रहे और पर्चे बांटे जाते रहे. कोई किसी से कुछ दूसरा नहीं बोल रहा था. सब एक बात कह रहे थे, सब एक ही गीत गा रहे थेः धर्मेंद्र प्रधान इस्तीफा दो, सोनम सर को रिहा करो... पूरा जंतर-मंतर गूंज रहा था.

ओडिशा के हमारे कुछ साथी ओड़िया में बातें कर रहे थे कि एक लड़की जाते-जाते उनकी बात सुन कर रुक गई. यह संजना थी. उसके पिता कभी आंदोलनों से जुड़े रहे थे. तब पिताजी आंदोलन में थे, आज **संजना** आ जुड़ी थीः ''मैं खुद को रोक ही नहीं पाई''. अब तक हमारे समूह में गुजरात से गीताबेन, बंगाल से बरनाली भी आ जुड़ी थीं. दोनों अकेले ही निकली थीं और दिल्ली पहुंची थीं. ऐसी एक नहीं, कई लड़कियों से मुलाकात हुई, जो अकेले ही धरना-स्थल तक आई थीं. कई तो रात में भी वहीं बेखौफ रुकती थीं.

उसी भीड़ में 12वीं कक्षा के दो लड़के मिले. मैंने पूछाः 'क्यों आए हो?'

वे झट से बोलेः ''सोशल मीडिया पर इतनी चर्चा हो रही थी कि देखने चले आए!''

''घर को बता कर आए हो?''

दोनों मुस्कराएः ''नहीं!''

भीड़ इतनी बढ़ गई थी कि व्यवस्था चरमरा रही थी. मैं सोच रही थी कि जिन निकम्मों ने यह अफवाह फैला रखी है कि यह सारा प्रदर्शन अमरीकी करोड़पति सोरोस के पैसों पर चल रहा है, वे यहां आकर एक बार देख पाते तो उन्हें पता चलता है कि ऐसे संकल्पवान युवाओं को कोई पैसों से खरीद नहीं सकता है! लेकिन जो खुद ही सत्ता के पैसों पर, सांप्रदायिक उन्माद के जहर पर

जीते हैं, उनके लिए ऐसी दीवानगी को समझना भी संभव नहीं है, इस पर चलना तो उनके सपने में भी संभव नहीं है.

दोपहर का खाना आया नहीं कि खत्म हो गया. हमने सोचा, कोई बात नहीं, रात में खा लेंगे. तभी जयपुर से चार युवा लड़के-लड़कियों की एक टोली हमारे पास आई. वे अपने साथ खाखरा, कुछ संतरे और पोस्टर बनाने के लिए कागज व रंग लेकर आए थे. हमने उनका लाया खाखरा व संतरा खाया. वे कुछ देर हमारे बीच बैठकर पोस्टर बनाते रहे, हमसे बातें करते रहे और फिर आगे बढ़ गए.

महाराष्ट्र के वर्धा से हमारी बहन **मालती** मेडिकल कॉलेज के कुछ युवा डॉक्टरों को साथ लेकर आई थी. वे डॉक्टर तो तुरंत ही मेडिकल बूथ में सेवा देने चले गए, लेकिन शाम को उनकी ओर से हम सबके लिए भोजन भी आ गया.



पिछली रात लगभग जगे-जगे ही निकली थी. गर्मी व उमस जान लेने पर उतारू थी. लेकिन कैसा गजब का नजारा था कि सैकड़ों युवा पंखे लेकर सबको हवा करने में जुटे थे. न जान, न पहचान लेकिन सबकी सेवा एक समान! सोना तो क्या होता लेकिन उन चलते पंखों को देखते व अपना पंखा चलाते हम लेटे रहे. एक तिरपाल भी मिल गया था, जिससे सिर के ऊपर अस्थायी छत बन गई थी. इस बीच कुछ और साथी भी आ पहुंचे. ये महाराष्ट्र के **अजय** तथा उनके दो दोस्त थे. उनकी शादी को अभी कुछ ही सप्ताह हुए थे, फिर भी वे धरने में शामिल होने आ गए.

आज रात का माहौल भी पिछली रात जैसा ही था—वही उमस, वही गर्मी, हैलोजन की वही काटती तेज रोशनी और डफली के साथ गूंजते गीत! बीच-बीच में कोई आकर बताता कि बाहर पुलिस की हलचल बढ़ रही है. लोग बारी-बारी से जागते इन सब पर नजर रख रहे थे.

सोनमजी की गिरफ्तारी के बाद यह आशंका बनी हुई थी कि 20 जुलाई के संसद-मार्च से पहले पुलिस व्यापक गिरफ्तारी करेगी और जंतर-मंतर पर कब्जा कर लेगी. आयोजक एक दूसरी बात से भी सतर्क थे. उन्हें आशंका थी कि आंदोलन को बिगाड़ने के इरादे से कुछ उपद्रवी भीड़ में घुसाए जा सकते हैं. हर कुछ घंटे में एक-दो ऐसे लोग पकड़ में भी आ रहे थे. आंदोलनकारी उन्हें घेरकर बाहर करते जा रहे थे. ऐसे लोगों में कभी कोई गोदी मीडिया के 'पत्रकार'

निकलते, तो कभी कोई उपद्रवी तत्व.

रात के करीब तीन बजे मेरी आंख खुल गई. पूरा मैदान युवाओं से पटा था. कुछ लोग जरूर सो रहे थे, लेकिन अधिकांश जाग रहे थे. कोई पानी बांट रहा था, तो कुछ बड़ी उम्र के लोग खड़े-खड़े सोए युवाओं को हाथ के पंखे से हवा कर रहे थे. एक-दो परिवार भी दिखाई दिए. छोटे बच्चों को कंधे पर बिठाए वे भीड़ में घूम रहे थे. शायद वे कुछ सहायता लेकर आए थे. थोड़ी दूर एक बड़ा समूह जमा हुआ था जो शेर-ओ-शायरी, कविताएं सुनाने-सुनने में मग्न था.

किसी चंपू ने कहा था कि दिल्ली के युवा यहां रात बिताने, मौज करने आते हैं. दिल्ली में रात गुजारने की जगहों की कमी तो नहीं है. ऐसे चंपू लोग वहां जाकर देखें तो कि कैसे लोग वहां जाते हैं और रात के तीन बजे जिन युवाओं से जंतर-मंतर भरा हुआ है, वे कौन हैं, कैसे हैं! कायरों की आंखें भी कायर ही होती हैं. वे कभी खुद से नहीं पूछते कि सारा जीवन खुद के लिए जीते-कमाते रहे कि कभी दूसरों के लिए भी, समाज के लिए भी जीए? जो ऐसे जीए ही नहीं कभी, वे जीने का मतलब समझें भी तो कैसे!

19 जुलाई की सुबह सभी कुछ अधिक चौकन्ने थे. पुलिस की गतिविधियों पर सबकी नजर थी. खुफिया सूचनाओं की चर्चा लगातार सब तरफ चल रही थी. सोनमजी को ले जाने के बाद पुलिस ने मंच का मुख्य माइक हटा दिया था. अब एक कामचलाऊ माइक से बार-बार घोषणा की जा रही थीः ''किसी भी स्थिति में लड़ाई, झगड़ा, गाली या हाथापाई नहीं करनी है. उकसाने की कोशिश होगी, लेकिन हमें शांत रहना है.''

''20 जुलाईः चलो संसद'' का नारा अब सबको एक दूसरी तरह से भी सुनाई दे रहा थाः चलो दिल्ली! देशभर से लोग पहुंचने लगे. भीड़ बढ़ती रही. हम



अपना क्रांति गीत गाते रहे, अपने नारे लगाते रहेः

- **शिक्षा का यह कैसा हाल—गई कलम से दूर कुदाल.**
- **हमला चाहे जैसा होगा, हाथ हमारा नहीं उठेगा.**
- **बदलो, बदलो आज की शिक्षा, नहीं तो मांगनी पड़ेगी भिक्षा.**
- **आजादी की नई लड़ाई, मिलकर लड़ेंगे बहन-भाई.**
- **संपूर्ण क्रांति अब नारा है, भावी इतिहास हमारा है**
  हर जोर-जुल्म के टक्कर में संघर्ष हमारा नारा है.
- **हिंसा की आंधी, रास्ता है गांधी.**

जंतर-मंतर के भीतर जितने लोग थे, लगभग उतने ही बाहर सड़कों पर, कतारों में खड़े अपनी बारी का इंतजार कर रहे थे. ऊपर से सारा दृश्य किसी मेले या प्रदर्शनी जैसा लगता था, भीतर कुछ खास था, जो चमक भी रहा था और उबल भी रहा था.

जयपुर के साथी फिर मिले और फिर हमें मिला उनका खाखरा. दिल्ली के हमारे साथी सत्यप्रकाश भाई हम सबके लिए रोटी-सब्जी लेकर पहुंचे. उनके साथ आईं एक बहन ने आंदोलन के लिए कुछ आर्थिक सहयोग भी दिया. 19 जुलाई की रात तक हमारी टोली भी बड़ी हो चुकी थीः ओडिशा से श्रीकांत, सुब्रत, बरुण, अज्जु, चिन्मय, सागर, अनिरुद्ध, ब्रज, सूर्या, नेत्रनंद और अमूल्य आ जुड़े थे. महाराष्ट्र से शारूबी, ऋषि, देवीदास, अजय, शिवाजी, गुरुराज, मालती, डॉ. सचिन और उनके दो डॉक्टर साथी थे. उत्तरप्रदेश से सक्षम, गुजरात से दीना बेन, मध्यप्रदेश से सचिन, सौरभ, फूलबाई, नगीना, शिवकांत, रूपल, अजमत और उनके तीन साथी आए थे. दिल्ली से मधु, काजल और ज्योति थे.

ऐसा लगता था जैसे अपने-अपने बिलों से निकल कर सारे कॉक्रोच यहीं जंतर-मंतर चले आ रहे हैं. इधर खाना आता था और उधर खत्म हो जाता था. किसी को पूरा भोजन मिला, किसी को केवल छाछ, और कुछ को वह भी नहीं. लोग बिना खाए ही सो जाते. मैंने किसी के मुंह से इसकी शिकायत नहीं सुनी. जब आप लगातार शोर, गर्मी और उमस में रहने लगते हैं तो धीरे-धीरे यह मुश्किल आसान लगने लगती है. उस रात कोई दो घंटे हम सो भी सके.

आधी रात को किसी ने जगायाः ''जिसने खाना नहीं खाया हो, उसके लिए बर्गर आए हैं''. हम तुरंत उठ बैठे. थोड़ा-सा खा लिया कि पता नहीं अगले दिन कब खाने का मौका मिले.

कुछ साथी रात में बाहर का हाल देखकर लौटे. उन्होंने बताया कि हजारों लोग सड़कों पर ही सोए हुए हैं. वे अगले दिन संसद-मार्च में शामिल होने के लिए दूर-दूर से आए थे. हमने तय किया कि अब फ्रेश होने के लिए बाहर नहीं

जाएंगे. जंतर-मंतर के ही शौचालयों में जितने कम पानी में काम चल सकता था, उतने में काम चलाया. हमने अपना सामान एक दिन पहले ही गांधी शांति प्रतिष्ठान पहुंचा दिया था ताकि संसद-कूच की अफरातफरी में कोई परेशानी न हो. बैनर आदि लेकर हम तैयार हो गए.

सुबह हल्की बारिश शुरू हो गई. मंच से निर्देश का इंतजार हो रहा था. पता चला कि भीम आर्मी के चंद्रशेखर आए हैं और भाषण दे रहे हैं. लगभग एक घंटे तक प्रतीक्षा करने के बाद भी जब आगे के लिए कोई स्पष्ट निर्देश नहीं मिला तो हमने खुद ही आगे बढ़ने का निर्णय लिया. ऐसी ही बेचैनी दूसरे युवा भी महसूस कर रहे थे. आयोजकों ने इसकी पुख्ता योजना नहीं बनाई थी. इसलिए हम निकले तो दूसरे भी कई निकले. भीड़ में एक बार आप शामिल हुए तो फिर रुकना या पीछे लौटना संभव ही कहां था! अब तो चलना और आगे बढ़ते रहना ही एकमात्र विकल्प रह गया था. हजारों के साथ एक दिशा में, एक संकल्प के साथ मस्ती भरी कूच का मतलब लिखकर बताना संभव नहीं है. जो वहां थे वही उसे अनुभव कर सके!

पुलिस ने जगह-जगह बैरिकेड बना रखे थे. उनकी तरफ से हर संभव बाधा रची गई थी, रची जा रही थी. कूच पर निकले युवाओं ने हर तरह से अनुशासन बनाए रखने की सावधानी रखी थी. बढ़ते जाने का उनका संकल्प कहीं भी कम. जोर नहीं पड़ा था. चलते-चलते मैंने देखा कि पहला बैरिकेड टूट गया था और हम सभी उसे पार कर आगे चले जा रहे थे. यहीं हमने पत्थरों से भरा वह डंपर भी देखा और टूटी हुई वह कार भी देखी जो अब सरकार-पुलिस के शर्मनाक-शैतानी गठबंधन की कहानी कहती सारी दुनिया में मशहूर हो चली है.

यह खबर भी फैली कि कुछ बैरिकेड्स में पुलिस ने बिजली का करंट लगा रखा है. यह अफवाह निकलती कि उससे पहले ही बैरिकेड से बिजली का वैसा झटका खाकर आए युवाओं से हमारी मुलाकात हो गई. जिस पुलिस अधिकारी ने ऐसा सोचा होगा या तत्काल ऐसी योजना बनाई होगी कि बैरिकेड्स में बिजली दौड़ा दी जाए, उसे आधुनिक राक्षस ही कहा जा सकता है. आप भी सोचना कि ऐसे लोगों का, ऐसी व्यवस्था का मनुष्यता से कितना नाता रहा होगा! लेकिन मैं देख रही थी कि ऐसी घटनाओं से उत्तेजित होने की जगह युवा ज्यादा उमंग व दृढ़ता के साथ बढ़े जा रहे थे.

बैरिकेड पार करके थोड़ी देर सुस्ताने हम फुटपाथ पर बैठ गए. पीछे से कूच करने वाली टोलियों का रेला आ पहुंचा तो हम फिर साथ हो गए.

हमारे पास पानी तक नहीं था. वैसी उमस भरी गर्मी में प्यास से बुरा हाल था. रास्ते भर हम लोगों से पानी मांग-मांगकर पीते रहे और सबने उदारता से

पानी पिलाया. कई लोग गर्मी और भीड़ के कारण चक्कर खाकर गिर पड़े. उनके लिए एंबुलेंस बुलानी पड़ी. रास्ते में एक छोटा-सा सार्वजनिक शौचालय मिला. कुछ लड़के उसकी छत पर चढ़ गए और ऊपर रखी टंकी से बोतलों में पानी भर-भरकर नीचे फेंकने लगे. उनमें से एक बोतल हमें भी मिल गई.

करीब ढाई घंटे चलते रहने के बाद हमें एहसास हुआ कि बैरिकेड्स इस तरह खड़े किए गए हैं कि हम संसद की ओर बढ़ने के बजाय जंतर-मंतर के चक्कर में ही घूमते रह जाएं. हममें से अधिकांश दिल्ली से नहीं थे, इसलिए रास्तों की भी जानकारी हमें नहीं थी.

दूसरे बैरिकेड पर सबको अटका दिया गया. नारे लगने लगे, हंगामा उठने लगा. पूरा मजमा एक साथ शोर मचाता और फिर शांत हो जाता. हम जिस कोने में फंसे थे, वहां से कुछ दिखाई नहीं देता था. केवल तालियां, हूटिंग और शोर सुनाई देता था, और हम भी उसी में अपनी आवाज मिला देते थे.

शाम को जब बिछड़े साथी यहां-वहां से चलते-चलते इकट्ठे हुए, तब पता चला कि पुलिस ने कई जगहों पर जमकर लाठीचार्ज किया है. मेरे मन में अचानक ही यह बात कौंधी कि दिन भर जो चीखें आ रही थीं, शोर सुनाई दे रहा था, दरअसल वह लाठीचार्ज की पीड़ा व प्रतिकार की आवाज थी! हमारे चार साथी बुरी तरह लाठीचार्ज के शिकार हुए. एक साथी आंसू गैस की चपेट में आया था. आंखों की तेज जलन से बेहाल वह किसी तरह जंतर-मंतर लौट सका.

पूरी परिक्रमा कर जब हम जंतर-मंतर वापस पहुंचे तो हमने देखा कि हमारा मंच टूट चुका था. छोटे-छोटे समूहों में युवा इधर-उधर बैठे थे. पानी की बहुत कमी थी. जिसे जो मिल रहा था, वही खरीदकर खा रहा था. सत्यप्रकाश भाई, मधु और उनकी मां हम सबके लिए भोजन लेकर गांधी शांति प्रतिष्ठान पहुंच चुके थे. धीरे-धीरे हम भी वहां पहुंचने लगे. कुछ साथी अभी भी पुलिस कार्रवाई वाले इलाकों में फंसे हुए थे.

सचिन कई दिनों से जंतर-मंतर पर ही रह रहा था. उसकी अनेक युवाओं से दोस्ती हो गई थी. पूरे दिन वह कभी किसी की मदद करता, कभी भीड़ में फंसे लोगों को निकालता और कभी खुद लाठियां खाता रहा. सबसे आखिर में सचिन और टैन गांधी शांति प्रतिष्ठान पहुंचे. दोनों भूखे-प्यासे थे. टैन को तेज बुखार भी था. सौरभ हम सबमें सबसे छोटा था. उसके पास मोबाइल भी नहीं था. फिर भी वह किसी तरह सबको खोजता-खोजता प्रतिष्ठान पहुंच गया. हममें से कई लोगों ने पहली बार पुलिस की ऐसी दरिंदगी देखी थी. सौरभ पर उन सबका गहरा असर पड़ा था. उसने इंसान का ऐसा रूप पहले देखा नहीं था.

धीरे-धीरे, एक-एक कर हमारे सब साथी लौटे. कोई पैदल चला, कोई कुछ

दूर मेट्रो से आया, तो कोई बस या रिक्शे से. गुजरात की दीना बेन और बंगाल की बरनाली भी कीचड़ से लथपथ पहुंचीं. कुमार प्रशांतजी ने अपने निवास पर कई गद्दे बिछवा दिए थे ताकि हम सब कुछ देर आराम कर सकें. अधिकांश साथियों की उसी रात ट्रेन थी. सचिन, सौरभ और ओडिशा के ब्रज को अभी कुछ दिन दिल्ली में रुकना था. मेरी ट्रेन अगले दिन थी.

अगले दिन दीना बेन का जंतर-मंतर से फोन आया. सोशल मीडिया पर भी हम देख ही रहे थे कि युवा फिर धरना-स्थल पर लौट रहे हैं. हमने तुरंत ही तय किया कि हमें भी जंतर-मंतर पहुंचना चाहिए. हम पहुंचे तो देखा कि जंतर-मंतर का हाल तो गजब ही था. वहां युवाओं की संख्या लगभग उतनी ही थी जितनी पहले से थी. लाठियों-पत्थरों की मार, थकान-भूख आदि झेलते हुए भी वे उसी सहजता से लौटे थे जैसे अपने घर ही लौटे हों. डॉक्टर स्वयंसेवकों की टीम उनकी मरहम-पट्टी में जुटी हुई थी. हम मंच पर जाकर दीपकेजी से मिले. कुछ बताया हमने, कुछ उन्होंने बताया.

अक्सर कहा जाता है कि पीढ़ियों के बीच संवाद कठिन होता है. पिछली पीढ़ी अगली पीढ़ी को संभवतः पूरी तरह समझ नहीं पाती है. तेजी से बदलती तकनीकी दुनिया ने यह दूरी और भी बढ़ा दी है. जंतर-मंतर में युवाओं के बीच बिताए इन तीन दिनों और तीन रातों ने मुझे आज की पीढ़ी को नजदीक से देखने का अवसर दिया. उनके साथ रहते, चलते, जागते और बातें करते हुए मैंने उन्हें एक नए रूप में देखा. इस अनुभव ने मेरे मन में आज के युवाओं के प्रति एक नया विश्वास और भविष्य के प्रति एक नई आशा जगाई.

यह भी सच है कि यह आंदोलन देश के पूरे युवा समाज का प्रतिनिधित्व नहीं करता है. यहां मुख्यतः पढ़े-लिखे युवाओं का वह वर्ग था, जो डॉक्टर बनना चाहता है, प्रशासनिक सेवाओं की तैयारी कर रहा है या किसी प्रतियोगी परीक्षा के माध्यम से अपना भविष्य बनाना चाहता है. ये महत्वाकांक्षी युवा हैं. इनके पीछे ऐसे परिवार हैं, जो अपने सामर्थ्य से बढ़कर उनकी पढ़ाई में निवेश कर रहे हैं. सोशल मीडिया की नई ताकत ने इन्हें अच्छे शिक्षकों और जानकारी के वृहत्तर श्रोतों तक पहुंचा दिया है. इसी नई तकनीक ने इन्हें एक-दूसरे से जोड़ने का काम भी किया है.

लेकिन मुझे यह भी कहना चाहिए कि इस आंदोलन में मैंने केवल निजी महत्वाकांक्षा नहीं देखी. रचनात्मकता देखी, संवेदनशीलता देखी, धर्म-जाति आदि से अलग, समानता की एक नई चेतना भी देखी. हमारा समाज आज भी जाति, धर्म और लिंग के आधार पर बंटा हुआ है, लेकिन जंतर-मंतर पर सफाई करते हुए उच्च वर्ण के युवा भी दिखे और गर्व से 'ज ज ज ज जय भीम' के नारे

लगाते सैकड़ों-हजारों दलित युवा भी मिले.

रात के दो बजे लड़कियां बेखौफ टोलियों में घूम रही थीं. चर्चाओं में वे सबसे मुखर थीं और लड़के उन्हें बीच में टोकने के बजाय ध्यान से सुन रहे थे. एलजीबीटीक्यूआईए समुदाय के युवा भी पूरे अधिकार और आत्मविश्वास के साथ आंदोलन का हिस्सा थे. कुछ नासमझ लोग उन्हें परेशान करने की कोशिश भी करते थे, लेकिन उनके साथी उनके साथ खड़े रहते थे. अपनी सुरक्षा स्वयं करते हुए भी वे आंदोलन की एक सशक्त आवाज बने रहे. इन दृश्यों ने मेरे भीतर आज के युवाओं की एक नई छवि बनाई.

फिर भी यह याद रखना होगा कि हम समाज के एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, हम पूरा समाज नहीं हैं. इस आंदोलन की तात्कालिक मांग शिक्षामंत्री का इस्तीफा है और उद्देश्य परीक्षा-पत्रों का लीक होना रोकना है, लेकिन शिक्षा



की समस्या केवल पेपर लीक नहीं है. समस्या उससे कहीं बड़ी है. यदि शिक्षा का उद्देश्य केवल प्रतियोगिता, पद और पूंजी की दौड़ बनकर रह जाएगा, तो सत्ता में बैठे चेहरे बदलेंगे, व्यवस्था नहीं बदलेगी. कभी धर्मेंद्र प्रधान भी पेपर लीक विरोधी आंदोलन में रहे थे. आज वे पेपर लीक करने वाली उसी व्यवस्था का संचालन कर रहे हैं. यदि यह आंदोलन शिक्षा के आमूल परिवर्तन तक नहीं पहुंचा, तो संभव है कि कल इसी आंदोलन का कोई प्रतिभाशाली युवा उसी कुर्सी पर बैठा मिले. फिर हम क्या करेंगे, क्या कहेंगे? इसलिए आंदोलन का फलक भी बड़ा हो और उसका विस्तार भी बढ़े, यह जरूरी है. हम इसमें भी अपनी भूमिका निभा सकते हैं.

मेरे लिए बड़ा प्रश्न शिक्षा से आगे का है. आधुनिक सभ्यता ने मनुष्य की बुद्धि को उसके श्रम से अधिक मूल्य दिया है. साम्यवाद ने श्रमिक को सत्ता में स्थान देने की कोशिश की, लेकिन श्रम को वह गरिमा नहीं दिला पाया, जिसकी वह अपेक्षा करता था. महात्मा गांधी का आग्रह इससे अलग है. वे कहते हैं कि वकील और नाई दोनों के श्रम का मूल्य समान होना चाहिए. यदि हर मनुष्य को गरिमापूर्ण जीवन देना है, तो श्रम का सम्मान और उसका उचित मूल्य सुनिश्चित करना होगा.

इसीलिए मुझे लगता है कि केवल तकनीक, मशीनें या कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) हमारी समस्याओं का समाधान नहीं हो सकतीं. आधुनिक टेक्नोलॉजी मनुष्य को और उसके श्रम को हटाने की दिशा में जा रही है जबकि हमारे सामने चुनौती वह रास्ता खोजने की है, जिससे मनुष्य के श्रम को सम्मान भी मिले व दाम भी मिले. आज के विकास की दिशा मनुष्य और उसके श्रम को सम्मान देने की नहीं है. वह मनुष्य और उसके श्रम को पिछड़ापन मानता है और उससे मुक्त होना चाहता है. इसलिए उसकी सारी ताकत मनुष्य को प्रतिस्थापित करने में लग रही है.

जंतर-मंतर से लौटते समय मेरे मन में यही प्रश्न सबसे गहरा था—क्या हम केवल एक बेहतर परीक्षा-व्यवस्था चाहते हैं? एक बेहतर मनुष्य और एक समतावादी समाज न बने तो क्या अच्छी परीक्षा-व्यवस्था कोई मतलब रखती है? हम एक ऐसा समाज चाहते हैं जिसमें शिक्षा, श्रम और मनुष्य तीनों को समान गरिमा मिले. इस आंदोलन को यह दिशा बतानी है, समझानी है, इनके साथ चलते हुए इनकी दिशा बदलनी है. गांधी भी सारी जिंदगी यही करतब करते रहे— कभी किसी जवाहरलाल को तो कभी किसी भगत सिंह को, तो कभी किसी जयप्रकाश को तराशते रहे. हमें भी यह भूमिका निभानी है. इसलिए हटकर या कटकर नहीं, जुड़कर, साथ चलकर सफर पूरा करना है. ऐसा कुछ हम कर सके तो यह हमारी भी कसौटी होगी और इन युवकों की भी. कॉक्रोचों से डरने की नहीं, उनके साथ होने की जरूरत है. ऐसा कुछ हम साध सके तो समाज परिवर्तन की एक नई शुरुआत हो सकती है.

*

अगर कोई गुब्बारा आपके मुंह पर फट जाए, तो आपको गुस्सा नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे आप ही थे जिसने उसे फुलाकर उसके औकात से ज्यादा बड़ा कर दिया था.

कुछ इंसानों के साथ भी हम ऐसा ही करते हैं! **• दीपक सारस्वत**

लोकतंत्र

लोकतांत्रिक भारत की आजादी का दिन : 20 जुलाई 2026...

वे सब अपने भविष्य को मार-पीट-कूट कर हार गए थे; ये सब वर्तमान के हाथों पिट-मर-कुट कर जीत गए थे! वे शर्म से सर नहीं उठा पा रहे थे; इनका सर कहीं, किसी के सामने शर्मिंदा नहीं था. और जंतर-मंतर की हवा जहां-जहां पहुंची, उसने जिन-जिन को छुआ सब बोल पड़े...



अंधभक्त!

आपको पता है, बीजेपी का सबसे बड़ा एचीवमेंट क्या है?... उसका सबसे बड़ा एचीवमेंट है कि उसने अंधभक्त पैदा किए हैं. इनका देश से कोई लेना-देना नहीं है. इन्हें बस अपनी पार्टी की चाटुकारिता करनी है. • **एंग्री बाबा**

इस सरकार में ऐसा क्या है जो 2014 से अब तक मंहगा नहीं हुआ है? . ..गहराई से सोचा तो समझ में आया कि अंधभक्त तब भी दो कौड़ी के थे और आज भी दो कौड़ी के ही हैं! • **सौम्या**



रे देश मेरे!
रे पुलिस-सिपाही लाठीवाले
क्या घर जा कर तू रोया कल?
रे सांसद मेरी संसद वाले
क्या घर जा कर सो पाया कल?

मैं कल रोया खून के आंसू
ना मैं सोया किसको कोसूं?
बच्ची मेरी नींद में चीखी
सपने में उसने लाठी देखी
रे सिपाही लाठीवाले
क्या घर जा कर तू रोया कल?

आंखों में आंसू सबके लिए
मुझे चाहिए वह सरकार
हाथ कंपकंपाते सबके लिए
मुझे चाहिए वह सरकार
मैं तो सीमा के अंदर हूं
झप्पी क्यों है सीमा पार
सबके लिए आंखों में आंसू
मुझे चाहिए वह सरकार

रे सांसद मेरी संसद वाले
क्या घर जा कर सो पाया कल?

ट्रोलियां मुझको देने वाले
सहचर रहो तुम साथी भी
भारत मां की कोख से जनमे
मैं भी तुम भी ये भी वो भी

रे पुलिस-सिपाही लाठीवाले
क्या घर जा कर तू रोया कल?
रे सांसद मेरी संसद वाले
क्या घर जा कर सो पाया कल?

• अतुल कुलकर्णी
(फिल्म अभिनेता)

बीमारी और बीमार!

सुबह से कोशिश बहुत की नॉर्मल रहने की, काम करने की, खाना बनाने की... कुछ भी नहीं हो पा रहा है यार!... 50-60 हजार बच्चे-जवान जो इस देश का भविष्य हैं, जो इस देश को आगे ले जा सकते हैं, वे पिट रहे हैं और पिटते-पिटते हंस रहे हैं और हंसते हुए फूल दे रहे हैं पुलिस को... उसे आतंकवादी कहा जा रहा है और वही पिट भी रहा है फिर भी फूल दे रहा है... खून से लथपथ है... लड़कियों के कपड़े फाड़ दिए... बच्चों के सर फाड़ दिए... और एक सिंगल नेता भी नहीं है आपका जिसकी जिम्मेवारी की बात हो रही है... इसलिए हम वोट देते हैं क्या... चलो मान लेती हूं कि कॉक्रोच जनता पार्टी फ्रॉड है, लेकिन वे बच्चे जो सामने खड़े थे वे भी फ्रॉड हैं... जिनके बच्चों ने फांसी लगा ली, क्या वे भी फ्रॉड हैं... न कभी आम आदमी पार्टी अच्छी लगी मुझे, न कभी कांग्रेस पार्टी अच्छी लगी... ये जो कॉक्रोच जनता पार्टी है इससे भी मेरा कोई लेना-देना नहीं है... लेकिन नफरत बीजेपी से हो गई है अब!!... जिस तरह ये लोग बच्चों को पीटने को जस्टिफाई कर रहे हैं न वह इतना घटियापन है, इतना



घटियापन है कि... कहते हैं कि अगर वे संसद की तरफ चले जाते तो?... अगर वे किसी पर हमला कर देते तो?... इसलिए लाठीचार्ज कर दिया...अरे तुमने मणिपुर जला दिया... तुमने सारे पेड़ काट डाले... तुमने सारी हवा खराब कर दी... तुमने पेपरलीक कर दिए...देश का भट्ठा बिठा दिया तुमने ...और हम तुमसे एक सवाल तक नहीं पूछ सकते... तुमसे एक रिजाइन नहीं दिया जा रहा है... वे कुछ कर देते तो...इसलिए लाठियां मारीं?... तब तो तुम्हें सीधे गोली मार देनी चाहिए...

...और उनसे भी बड़े बेवकूफ तो अंधभक्त हैं...अब किसी अंधभक्त से बहस?...भाई साहब, किसी अंधभक्त से बहस यानी जिंदगी तहस-नहस...अगर अंधभक्त आपसे बहस करे तो आप याद रखिएगा कि हमें बीमारी से लड़ना है, बीमार से नहीं!

• निधि

सब कुछ याद रखा जाएगा...

मैं नसीरुद्दीन शाह हूं. आपसे दो बातें साझा करना चाहता हूं.

पहली बात तो यह कि एक जाहिल यदि इस देश की रहनुमाई करे तो वह यही चाहेगा कि सारा मुल्क उसी की तरह जाहिल, नाकाबिल, नासमझ और बेरहम बने.



अभिनय के दो अलग-अलग कोर्स मैंने किए हैं - एक राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में और दूसरा पुणे फिल्म इंस्टीट्यूट में. इन दोनों में मैंने जो सीखा अभिनय के बारे में, उससे कहीं ज्यादा मैंने सीखा उन छात्रों व बच्चों से जिनको सिखाने की कोशिश मैंने की. आज मेरी पूरी हमदर्दी उनके साथ है. मैं उन्हें अपनी एक-एक सांस के साथ हजार-हजार दुआएं देता हूं और हर टीचर्स डे पर उनको सलाम करता हूं.

इस वक्त मेरा दिल भरा हुआ है और मैं गुस्से से खौल भी रहा हूं यह देख कर कि हमारे इन बच्चों के साथ कैसी क्रूरता से बर्ताव किया जा रहा है उन गुंडों के हाथों, जो मुझे अमरीका के आइस एजेंटों की याद दिलाते हैंः मुंह पे नकाब, हाथ में डंडा!... कभी अपने बच्चों के बारे में भी सोचा करो और यह भी सोचो तुम्हारे कारनामों का अंजाम एक दिन तुम्हें भी मिलेगा ही.

दूसरी बात इन बच्चों से कहना चाहता हूं मैं कि हिम्मत न हारें! बहुत से

लोगों की हमदर्दी आपके साथ है. बहुत सारे लोग आपके साथ हैं. आप लड़ते रहें. मुझे अपने मुल्क के युवाओं से हमेशा उम्मीद रही है और वह उम्मीद आज ज्यादा मजबूत और ज्यादा रोशन हो गई है. अपनी लड़ाई आप लड़ते रहें, हम सब आपके साथ हैं... और इस मुल्क की हुकूमत को मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि यह सब कुछ याद रखा जाएगा.

• नसीरुद्दीन शाह
(फिल्म अभिनेता)

डफली से ये क्यों डरते हैं...

मुझे समझ में नहीं आता है कि इनको हमारी डफली से क्या दिक्कत है! आप जब करोना भगाने के लिए सारे देश से थाली बजवा सकते हैं तो क्या हम आपको सुनाने के लिए डफली नहीं बजा सकते? डफली तो नये समाज को बनाने का एक प्रतीक है. आपके कानों तक हमारी बात जा रही है, तो बस हमारा काम हो गया! जिन्होंने लोकतंत्र के बारे में थोड़ा भी पढ़ा होगा, समझा होगा तो उन्हें पता होगा कि लोकतंत्र हमेशा विरोध की आवाज से ही चलता है. सरकार की अच्छाइयां उजागर करना हमारा काम नहीं है. वह तो सरकार खुद ही रात-दिन करती रहती है. आप तो हमें बताइए कि आपने 12 साल में क्या किया? लोकतंत्र में जो जनता है, उसे हमेशा विपक्ष में खड़े रहना चाहिए. लोकतंत्र में सरकारों से आपको काम करवाना है तो आपको हमेशा अपोजीशन में रहना चाहिए. यह बहुत बड़ा दुर्भाग्य है हमारा कि हमें बता दिया गया है कि जो सरकार के खिलाफ बोलता है वह देश के खिलाफ बोलता है. नहीं भाई, नहीं, ऐसा नहीं है. मोदी देश नहीं हैं, वे तो अपनी सरकार के गुलाम हैं. वे जनता के नौकर हैं. उनका काम जनता को सर्व करना है, जनता का काम उनको सर्व करना नहीं है. हमारा एक काम यह भी है कि हम उनको क्रिटिसाइज करें. इनसे पुल नहीं बन रहे हैं, इनसे रोड नहीं बन रहे हैं, इनसे स्कूल नहीं बन रहे हैं; और तरीका यह चला रखा है कि जो भी बुरा हुआ है वह सब नेहरू के कारण हुआ है! जो बना हुआ है उसे बेच रहे हैं, जो बना हुआ है उसे तोड़ दे रहे हैं.



अरे, आपसे खुद तो कुछ बन नहीं रहा है, जो बना-बनाया है, उसे तोड़ क्यों रहे हो? आप कर रहे हैं कुछ तो बस इतना ही इसका नाम बदल दो, उसका नाम बदल दो, और कुछ भी हम पूछें तो कह दो कि ये सब आतंकवादी हैं, देशद्रोही हैं. महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री ने अभी कहा हमारे लिए कि हम सब तो भाड़े के टट्टू हैं, कुत्ते हैं, कि ये हैं, वो हैं! ऐसी तो इनकी भाषा है.

● जंतर मंतर पर डफली बजाती एक लड़की की बात

सच किसी से नहीं डरता है...

कुछ दिन पहले मैंने एक विडियो डाली थी इंस्टाग्राम पर दिल्ली यूनिवर्सिटी के एक प्रोफेसर के खिलाफ. उसके बाद हमारे एचओडी मुझे अपने कमरे में बुला कर कहते हैं कि तुमने जितनी भी रील बनाई है उस प्रोफेसर के खिलाफ, वह सारी डिलीट कर दोः चित्रा, तुम इस व्यवस्था का एक छोटा-सा हिस्सा हो लेकिन हम तुम्हारा बहुत कुछ बिगाड़ सकते हैं. .. यहां ऐसा हाल है कि आप किसी प्रोफेसर के रूम में कितनी बार गए हो, उस आधार पर तुमको नंबर मिलेंगे. आज भी यह एचओडी मुझसे कह रहा था कि तुमने जिसके खिलाफ रील बनाई है, उस प्रोफेसर के रूम में जाओ... उसके रूम में जाओ... उससे बात करो! मैंने एचओडी से कह दिया कि मैं उस प्रोफेसर के रूम में नहीं जाऊंगी. मैंने इन यूनिवर्सिटी में अपने बल-बूते पर, अपनी मेहनत व टैलेंट पर एडमीशन लिया है, मैं किसी प्रोफेसर के रूम में नहीं जाऊंगी... मैं भीख नहीं मांगूंगी. यही है डीयू की रियल्टी! मैं अपनी रील्स बिल्कुल भी डिलीट नहीं करूंगी. वह सच है जो मेरे साथ हुआ है. सच... और सच कभी भी समाज से खत्म नहीं हो सकता! और सच किसी से नहीं डरता है. मैं भी किसी से नहीं डरती हूं.



● आंसुओं से भरी आंखों से जयपुर की एक लड़की ने अपनी बात कही

जुल्म बढ़ाओ...

हम मायूस नहीं हैं, हम हैरान नहीं
हमने जैसा सोचा था तुम वैसे ही निकले

रात में सूरज लाने का वादा कर के
दिन में रात उगा कर दिखला दी तुमने
पानी पानी कह के बरसाया तेजाब
और एक आग लगा कर दिखला दी तुमने

सच भी इतना झूठा झूठा लगने लगता है
झूठ भी इतनी सच्चाई से बोलते हो
फर्क कहां करते हो तुम वाशिंदों में
बस मजहब के कांटे पर ही तौलते हो

है दस्तूर कि सुबह होने से पहले
रातों का गहरा हो जाना लाजिम है
जुल्म बढ़ाओ कि तुम्हारे जुल्मों का
हद से बाहर हो जाना लाजिम है

हम मायूस नहीं हैं, हम हैरान नहीं
हमने जैसा सोचा था तुम वैसे ही निकले

• विशाल भारद्वाज
(सुप्रसिद्ध फिल्मकार)



एक मां...

आज मुझे सिस्टम पर गुस्सा नहीं आ रहा है, तरस आ रहा है. पता है क्यूं?. .. समझाती हूं. मेरा बेटा है 20 साल का - जैनजी, ऑटिस्टिक... न्यू टर्मिनोलॉजी में–दिव्यांग! पिछले 18 साल से एक ही कोशिश है मेरी कि वो बोल पाए, बता पाए कि उसको क्या तकलीफ है, कि उसे क्या चाहिए. मैं पूरी जिंदगी निकाल दूंगी इसे अचीव करने में; और ये देश है कि जिसके बच्चे अब तक चुप बैठे थे, बोल नहीं पा रहे थे... फाइनली अब वे बता पा रहे हैं कि उन्हें क्या चाहिए, कि उन्हें क्या तकलीफ है पर हम सुनना नहीं चाहते हैं. हम तो इफ-बट, ऐसे-वैसे कर रहे हैं... यही करना है हमें... हद है!... जब बच्चे लाठी खा रहे थे न, तब मुझे हर उस बच्चे में अपना बेटा दिख रहा था. जो बोलना चाहता है, बताना चाहता है, अपनी आवाज निकालना चाहता है... पर पता नहीं क्या रोक के बैठा है उसे! और आप अपने बच्चों को खुद चुप करा रहे हो!! मत बनाओ, मत बनाओ उन्हें दिव्यांग... बोल पा रहे हैं तो प्लीज सुन लो. मुझसे ज्यादा कोई नहीं

जानता है कि यह कितना इंपोर्टेंट है.

• नेहा अहलूवालिया

21 जुलाई 2026 : हैदराबाद

हमें स्कूल में शपथ दिलाई जाती थी : भारत हमारा देश है और सभी भारतीय मेरे भाई-बहन हैं. लेकिन अभी 20 जुलाई 2026 को मैंने देखा कि जो सत्ता में हैं वे मेरे भाइयों-बहनों से कैसा सलूक कर रहे हैं! मैं वह सब देखते हुए कैसे चुप बैठी रह सकती थी. मैं कमरे में बैठ कर ऐसी पढ़ाई करती रहूं, जिसका मेरे देश से कोई मतलब ही नहीं है? मेरे अंदर एक गुस्सा घुमड़ रहा था. 20 जुलाई को मेरे संस्थान का एयरटेल नेटवर्क जाम कर दिया गया जिससे मैं एकदम लाचार हो गई. मैं यह देख भी नहीं पा रही थी कि वे मेरे भाइयों-बहनों के साथ क्या-क्या कर रहे हैं. पूरे दिन यही बात मन में घुमड़ती रही कि ऐसे में मैं अपने भाई-बहनों के लिए कुछ कर नहीं पाई, उनके साथ खड़ी भी नहीं हो पाई तो लॉ की मेरी डिग्री कागज का व्यर्थ का एक टुकड़ा बन कर रह जाएगी. इसलिए मैं खुद को झाड़ कर उठी और हैदराबाद के प्रोटेस्ट साइट पर पहुंच गई. मेरे कई साथी वहां गए हुए थे. मैं कितनी खुश हूं कि मैं ऐसा कर सकी. वहां का अनुभव एकदम ही अलग था! वह एकदम शांतिपूर्ण प्रदर्शन था. पुलिस का रवैया भी सहयोग का था तथा हम सभी सुरक्षित महसूस कर रहे थे. मैं वहां कितना हल्का महसूस कर रही थी. मेरे यह सब करने का एक कारण और भी था. हमें बचपन से बताया गया था कि तुम बड़ी हो, तो तुम जैसा करोगी, तुम्हारे छोटे भाई-बहन भी वैसा ही सीखेंगे. फिर हुआ यह कि भाई का नीट का पेपर लीक हो गया. उसे बहुत धक्का लगा. उसे ऐसे हाल में छोड़ कर मैं अपनी पढ़ाई करती रहती और पीछे रह जाती, यह संभव ही कैसे था. मैं वहां किसी राजनीतिक दल का समर्थन करने नहीं गई थी. मैं वहां गई थी, क्योंकि नीट के पेपर लीक के कारण बच्चों ने आत्महत्या कर ली और सरकार ने उस संदर्भ में जैसी चुप्पी साध ली, उससे मैं बहुत क्षुब्ध थी. इसलिए मानवता के लिए मैं वहां पहुंची, क्योंकि जीवन में मैंने अब तक जितना सीखा है, उसमें सबसे



बड़ी बात यह सीखी है कि मानवता सब धर्मों से बड़ी भावना है.

• हैदराबाद के प्रदर्शन में शामिल एक लड़की का बयान

वहां मैंने वह भारत देखा...

वहां मैंने वह इंडिया देखा जो ये न्यूज चैनल वाले नहीं दिखाते हैं. मैंने वहां देखा कि हिंदू-मुस्लिम-सिख-ईसाई-किन्नर-एलजीबीटी हर तरह का समुदाय, हर जाति-धर्म के लोग जुटे हुए थे और एकदम एक थे. माहौल इतना पॉजिटिव था कि मैं भरोसा ही नहीं कर पा रही थी. सच बता रही हूं कि मैं क्राउड में जाने से बहुत डरती हूं. लेकिन मैं वहां इतना सेफ फील कर रही थी कि क्या कहूं! मैं अपना पोस्टर लेकर रास्ते से गुजर रही थी तो एक बूढ़े अंकल ने, जो मुस्लिम थे, मुझे रोक कर पूछाः बेटा, पानी लोगी? मैं निहाल हो गई! कोई ओआरएस दे रहा है, कोई फर्स्टएड ले कर बैठा है, कोई मरहम-पट्टी करने में लगा है. किसी को कोई जरूरत हो तो लोग तुरंत कहीं से आ जाते हैं. कोई दूसरों को हवा करने में लगा है. किन्नर भी उसी तरह काम में लगे थे. यह वह प्यारा इंडिया था वहां जिसके बारे में हम सुनते तो थे, कभी देखा नहीं था. सभी इंसान को इंसान समझ रहे थे. कोई भेद था ही नहीं.



मेरी तरह बहुत ऐसे इंफ्लूएंसर भी थे कि जो वहां गए ही नहीं. मैं गई क्योंकि मैंने खुद से कहा कि मेरे देश के लिए जो सही होगा, उसमें मैं स्टैंड लूंगी; जो गलत होगा उसके लिए भी मैं स्टैंड लूंगी. बहुत सारे लोगों में रीढ़ की हड्डी नहीं है. उनको डर लगता है कि ऐसा कुछ करेंगे तो मेरे फॉलोवर कम हो जाएंगे. क्या करोगे भाई ऐसे फॉलोवर जमा करके जिनके आगे तुम झूठी जिंदगी जीते हो, नकली चेहरा लगाकर आते हो! इतना डरते हो कि वे तुम्हें अनफॉलो कर देंगे? मैं साफ कहना चाहती हूं कि जो कोई भी इस प्रोटेस्ट के खिलाफ है वह अपने देश का सपोर्टर नहीं है, बस, एक पार्टी का सपोर्टर है.

• हुस्ना

गांधी कहां नहीं है!

गोली चलाने के बाद, 30 जनवरी 1948 को शाम 5.17 बजे नाथूराम गोडसे को लगा होगा कि उसने समस्या खत्म कर दी. उसकी नजर में जो समस्या थी, उसने उसे समाप्त कर दिया. लेकिन वह समस्या खत्म नहीं हुई. वह समस्या खत्म नहीं हुई इसका सबूत यह है कि अगर अन्ना आंदोलन करते हैं तो वहां भी गांधी; शाहीनबाग आंदोलन करता है तो वहां भी गांधी, और हम यहां जंतर-मंतर पर बैठे हैं तो यहां भी गांधी! नरेंद्र मोदी विदेश में जाते हैं तो वहां भी गांधी! अब मजबूती में कहो कि मजबूरी में कहो कि यह देश गांधी का है और शरण अंततः गांधी की ही लेनी है. अगर यह बात आज समझ में नहीं आती है, तो कोई बात नहीं. विध्वंस के बाद फिर निर्माण होगा. हो सकता है कि यहां जब सब खंडहर हो जाए, हो सकता है कि जब यहां कोई घर न बचे, इमारतें न बचें तो बहुत संभव है कि हममें से ही कोई उन खंडहरों के बीच जाए और वहां से गांधी की तस्वीर को, जो धूल-धूसरित हो, उसे उठाए, पोंछे और बाहर लेकर निकले और फिर वहां से नया निर्माण शुरू करे; क्योंकि गांधी विध्वंस नहीं, निर्माण का नाम है. आज यह समझ में आता हो कि नहीं आता हो लेकिन समझ में आएगा जरूर.

• फ्रीस्पीच फाउंडेशन द्वारा जारी



एक-दो मार देते...

सर लाठीचार्ज कब होगा?... होगा न?... एक-दो मार देते... 20 तारीख को आया नहीं था... मैं वहां घर पर बैठा था...बड़ी कर कोफ्त हो रही थी मुझे...

- **विनय ठाकुर (21 जुलाई को डंडे वाली पुलिस का झुंड देखकर उनसे बोला.)**

चले कल...

चलो कल चलें संसद कि झंडा लहराना है
15 साल की मुर्दा शांति के ऊपर
उस एक आदमी की अंधभक्ति के ऊपर
ये हिंदू-मुस्लिम की जहालत के ऊपर

कॉक्रोच बुलाए जाने की जलालत के ऊपर
चलो कल कि संसद चला जाए
कि उस राजनीति के शमशान घाट के ऊपर चुप्पी जलानी है
इतने सालों की घर कर गई बुजदिली जलानी है
हमारी जिंदगी की कीमत आंकड़ों में है
उस कीमत की रसीद जलानी है

इस झूठ-फरेब-नफरत के निजाम की
सारी-की-सारी जिद जलानी है
चले कल कि संसद चला जाए कि
नई दिल्ली 118 रफी मार्ग का नजारा बदलना है
ये देश-विदेश में फिरने वाला आवारा बदलना है
चोर-उचक्का-निकम्मा नाकारा बदलना है
अब हो नहीं सकता और गुजारा बदलना है

चलो कल संसद चला जाए
आंसू गैस के गोलों के आगे मुट्ठियों में नमक के ढेले भर कर
पानी की तोपों के आगे जज्बे से पत्थर हुई छाती लेके
लाठी और पुलिस बल के आगे
डफली और नारे लेके
इनके झूठी-जुल्मी कानून के आगे बाबा साहेब की तस्वीर लेके
कोई आजादी के दिनों में सिखा गया था
उस महात्मा की तरकीब लेके

नेहा अमीन मनीष का हौसला लेके
अब जो कर लिया है लाल फैसला लेके

चले अब संसद चला जाए
कि आंदोलन अब रुकेगा नहीं यही बताने
आंकड़े कैसे जन सैलाब बन जाते हैं यही दिखाने
बाइस दिन की भूख झुठलाई नहीं जा सकती यही जताने
कैसी सुनती है उल्टी गिनती यही गिनाने

चलो कि संसद चला जाए झंडा लहराने

• सौम्या हेरे

हल्दीवाला धूप पीकर सो जाना...

थक गए होगे! नींद तो आ जाएगी न आज रात को?... तकलीफ इस बात नहीं रहेगी है कि तुमने लाठी क्यों मारी. मारना, न मारना तुम्हारे हाथ में था ही नहीं. तुम तो अपना काम कर रहे थे... हम इसे समझते हैं. तकलीफ इस बात की जरूर रहेगी कि तुम थोड़े धीरे से मारते - इतने धीरे से कि चोट नहीं लगती! यह चुनाव तो तुमने किया कि तुम्हें लाठी कितनी जोर से घुमानी है, और अपने इस चुनाव के साथ तुम्हें आजीवन जीना पड़ेगा, यह याद रखना. यह भ्रम अपने भीतर मत रखना कि मैं क्या करता, मुझे सरकार ने मारने के लिए बोला था! कितनी जोर से मारना है, यह सरकार ने नहीं बोला था. यह तुमने चुना था, और यह चुनाव मरते दम तक तुम्हारे भीतर रहेगा. तुम चाहते तो धीरे भी मार सकते थे. बच्चे ही तो थे न! और युद्ध का नियम यह है न कि निहत्थों पर वार नहीं किया जाता है.



यह दुनिया का पहला प्रोटेस्ट नहीं है. दुनिया के बहुत सारे देशों में प्रोटेस्ट हुआ है, जहां पुलिस ने चुना है न मारना... रोकना! यह तुम भी कर सकते थे आज. इसलिए आज तकलीफ तुमसे है. तुमने जितनी बेरहमी से मारा है न, वे लाठियां सिर्फ उन बच्चों पर नहीं पड़ी हैं, उन पर भी पड़ी है जो वहां

नहीं थे. और भूलेंगे नहीं हम इस बात को.

किसी सरकार से हमें गुरेज नहीं है. तुम अपनी पार्टियां चलाते रहो, सब करते रहो. मार्स पर जब आबादी आ जाए तो तुम वहां भी अपनी पार्टी बना लेना... लेकिन तुम? तुम्हारी न कोई पार्टी है, न सरकार! इसलिए तकलीफ आज सबसे ज्यादा तुमसे है. तुमने जितनी बेरहमी से मारा है न... तुमने वह आज चुना कि मार डालना है! खैर... अच्छे से सोना, बढ़िया नींद लेना, हल्दीवाला दूध पी लेना... हम तुमको याद रखेंगे, याद रखेंगे.

• उत्कर्ष गुप्ता

काला जादू!

मोदीजी कसम से काला जादू कर बैठे हैं. आपको बाहर जाने की जरूरत ही नहीं है. आपके घर में इतना ड्रामा हो रहा है. आप देखना कि अपने पापा से बात करोगे कि यह गलत था या नहीं, तो वे कहेंगे कि यह जो हुआ वह ठीक नहीं था लेकिन मोदीजी जो कर रहे हैं वह सब सही कर रहे हैं. बच्चों की जान चली गई, उन्होंने सुसाइड कर लिया. जंतर-मंतर के अलावा अभी देश में दो बड़े अनशन चल रहे हैं - वहां ऋषिकेश में पेड़ों को लेकर, मध्यप्रदेश में नदी को लेकर ट्राइबल अनशन कर रहे हैं. लेकिन आप कह रहे हैं कि मोदीजी जो कर रहे हैं वह सही कर रहे हैं. जंतर-मंतर पर लड़कियां मोलेस्ट हुईं, विदेशी लोगों के साथ बदसलूकी हुई लेकिन न भाई, मोदीजी जो कर रहे हैं वह सही कर रहे हैंः 'तुमको क्या पता, यह सब अपोजीशन का प्रोपगेंडा है'. तो देश-विदेश में जो इतना प्रदर्शन हो रहा है, हर जगह के लोग प्रोटेस्ट कर रहे हैं, यू.के. में, बर्लिन में, आस्ट्रेलिया में हर जगह प्रोटेस्ट हो रहा है और इतने लोग आ रहे हैं. क्या अपोजीशन घर-घर से लोगों को ला रहा है?... जिसका बच्चा गया है न उससे पूछो तब समझ में आएगा. यही बात है कि जब तक हमारे घर में, हमारे साथ ऐसा कुछ नहीं होगा न तब तक हम आराम से दूसरों पर इल्जाम लगाते रहेंगे. हर बात पर किसी को एंटिनेशनल, पाकिस्तानी मत बोलो. अरे भाई, क्रिटिसिज्म कब से गलत होने लगा? मेरी राय कुछ है, आपकी राय कुछ है लेकिन इससे मैं गलत कैसे हो गई? 50 साल पहले जो हुआ उससे मेरा मतलब नहीं है. मेरे आज को जो इफैक्ट कर रहा है, उससे मतलब है मुझको. एक मिनिस्टर का इस्तीफा



देने के लिए भाई इतने लोगों की कुर्बानी हो रही है. बात ही तो करनी थी. एक बार बात करने बैठ जाते तो रास्ता निकल आता. बात नहीं कर सकते आप, तो समझो कि ईगो कितना बड़ा है इनका! प्लीज, प्लीज अंधभक्त ना बनो. समझो कि मुद्दा क्या है. लेकिन आप पर भी काला जादू चल चुका है तो क्या कहूं!

• पवनी मेहरोत्रा

आपका अधिकार!

मेरा खयाल है कि यह 2005 की बात है. मनमोहन सिंह जेएनयू आए थे. युवकों ने उनका विरोध किया, उन्हें काले झंडे दिखलाए. वे सब उनकी नई अर्थनीति का विरोध कर रहे थे. उस तनाव में उनका डिफेंसिव हो जाना समझा जा सकता था लेकिन उन्होंने अपनी बात वाल्तेयर के एक कथन से शुरू की कि आप जो कह रहे हैं उससे में कतई सहमत नहीं हूं लेकिन ऐसा कहने के आपके अधिकार की रक्षा के लिए मैं जान की बाजी लगा दूंगा. उन्होंने



वहीं-के-वहीं यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर से कहा कि युवकों के साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं होना चाहिए. आप एक क्षण के लिए इस पर विचार कीजिए. एक प्रधानमंत्री उन लोगों के अधिकार की आवाज उठा रहा है, जो अभी-अभी उसका विरोध कर रहे थे.

अब इसी तस्वीर के सामने आप जंतर-मंतर की तस्वीर रख कर देखिए. आंसू गैस चले, लाठियां बरसीं, पैलेटगन का इस्तेमाल हुआ. यह वही 20 जुलाई का दिन था, जब सोनम सर ने सबसे संसद पहुंचने की अपील की थी. तब पार्लियामेंट क्या कर रही थी? वह एक ऐसा बिल पेश कर रही थी, जिसमें कहा गया था कि एक गीत का सम्मान जो नहीं करेगा वह तीन साल के लिए जेल भेज दिया जाएगा. किसी भ्रष्टाचार की बात नहीं, किसी पेपरलीक की बात नहीं हो रही थी, बात एक गीत के सम्मान को सब पर लादने की हो रही थी.

हमारा देश कहां से गिरकर कहां पहुंचा है! ठीक इसी कारण युवाओं का यह आंदोलन बड़ा-से-बड़ा होता जा रहा है. लोग अब पुराने व नये की तुलना करने

लगे हैं और जैसे ही आप अपने नोट्स साझा करने लगते हैं, आप एक बात तेजी से समझने लगते हैं कि जो विभाजनकारी पार्टियां हैं वे केवल इतना जानती हैं कि कैसे विभाजन की खाई को बढ़ाता रहा जाए. उनके हाथ में दूसरा कोई पत्ता है ही नहीं. अटल बिहारी वाजपेयीजी ने कहा था कि यदि पहरा देने वाला कुत्ता एक बार भी भौंके नहीं तो समझ लीजिए कि वह चोरों को जानता है.

एक बात हम सबको समझ लेनी चाहिए कि किसी भी प्रोटेस्ट का नेचर प्रोटेस्टर तय नहीं करते, वह सत्ता तय करती है. प्रोटेस्ट शांतिपूर्ण रहेगा या नहीं, यह प्रोटेस्टर नहीं, सरकार तय करती है. लाला लाजपतराय ने साइमन कमीशन के खिलाफ एक शांतिपूर्ण मार्च का नेतृत्व किया था न! उन पर राज्य ने ऐसा हमला किया कि उसी मार से उनकी जान चली गई. जालियांवालाबाग भी तो बैसाखी का शांतिपूर्ण प्रदर्शन था, जिस पर डायर ने गोलियां बरसा दी थीं. ऐसा ही जंतर-मंतर का हाल हुआ. प्रोटेस्टर अपने प्रदर्शन को नाम नहीं देते हैं, सत्ता देती है.

अब भी जिसका खूल न खौला/खून नहीं वह पानी है. अब समय आ गया है कि हम जागें, अपनी जानकारियां साझा करें और प्रदर्शन करें. आप आज ऐसे किसी को जानते हैं कि जो अभी भी चुप रह रहा है - खिलाड़ी, अभिनेता, राजनेता, इंफ्लूएंसर - तो मत देखिए कि वह कौन है. हमें मतलब सिर्फ इससे है कि कि क्या वह अपनी सक्रिय भूमिका का चुनाव कर रहा है? अगर नहीं, तो हमें सामूहिक फैसला कर उनकी तरफ से अपना मन फेर लेना चाहिए.

• रिया

*

➲ गांधीजी के कितने बंदर थे? तीन न? तो जब गांधीजी चले गए तो उनके बंदरों का क्या हुआ? जिसने आंखें बंद कर रखी थीं, वह न्यायपालिका में चला गया; जिसने कान बंद कर रखे थे वह सरकार में चला गया; जिसने मुंह बंद कर रखा था वह मीडिया बन गया.

• किसी की वाल पर लिखा मिला

सामयिकी

कॉक्रोच नागरिक हैं, प्रजा नहीं!

○ प्रताप भानु मेहता

जो खत्म हुआ वह एक प्रतिकार आंदोलन था; जो सामने है वह लोकतंत्र की आत्मा है. चुनौती उसे समझने, समझाने, बचाने व बढ़ाने की है. युवकों ने आत्मबलिदान से जो राह खोली है, उसे बंद न होने देने की जिम्मेवारी हम सब की है; हम सब जो प्रजा नहीं, नागरिक हैं

राष्ट्र के जीवन में ऐसे गौरवशाली क्षण भी आते हैं, जब देश के युवा साबित कर देते हैं कि वे आने वाली पीढ़ियों के सच्चे संरक्षक हैं. बेंजामिन डिजरायली के एक मशहूर कथन को थोड़ा बदलकर कहूं तो ऐसे कहूंगा कि यह एक ऐसी पीढ़ी है, जिसे उनके सनकी बुजुर्गों ने निराश कर दिया है. यह हमारी वह युवा पीढ़ी है, जो सत्तालोलुपता, सांप्रदायिकता, योग्यता को हर तरह से खारिज करने वाली असफल शिक्षा-व्यवस्था को सिरे से नकारती है, मनमानी करने वाले प्रशासन के सामने तन कर खड़ी होती है, जो हर किसी से पूछती है कि आप अपने फैसलों की जिम्मेदारी लेते हैं या नहीं? इस पीढ़ी ने उस दमघोंटू माहौल की चादर फाड़ दी है, जिसके अंधेरे में उसके भविष्य को बर्बाद करते कोई हिचकता नहीं है.

उन्होंने अपना एक ऐसा रास्ता चुना है, जिस पर चलते हुए वे अपना भविष्य खुद ही गढ़ सकते हैं. उन्होंने एक ऐसे प्रधानमंत्री (नरेंद्र मोदी) और उनके शिक्षामंत्री (धर्मेंद्र प्रधान) के घमंड को चूर-चूर कर दिया है, जो ताकत और लोकप्रियता के गहरे नशे में धुत्त थे. धर्मेंद्र प्रधान का इस्तीफा अपने आपमें कोई उपलब्धि नहीं है. लेकिन इस अर्थ में बहुत बड़ी उपलब्धि है कि इस इस्तीफे ने दिखा दिया है कि यह शासन भी, और दूसरा कोई शासन भी अजेय नहीं है. देश को रसातल में ले जाने वाला हर कदम मोड़ा जा सकता है, हर किसी को पीछे लौटने पर मजबूर किया जा सकता है.

यह आंदोलन न तो अवांछित है, न गलत समय पर छेड़ा गया है. परीक्षा

घोटालों के खिलाफ विरोध भारत की राजनीति में आम बात रही है. लेकिन यह पहली बार हो रहा है कि सत्ता के गलियारों में इसकी सीधी धमक सुनाई दे रही है. परीक्षा घोटालों के बाद आमतौर पर जो 'कॉक्रोच' (यह शब्द भारत के एक तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश ने हमारे युवाओं के नैतिक पतन को दर्शाने के लिए इस्तेमाल किया था) रेंगते हुए बिलों से बाहर आ जाते थे, उन्होंने इस बार राजनीतिक का आसमान छा लिया है. सोनम वांगचुक जैसे लोग जब भूख हड़ताल पर बैठे, तो इससे यह आंदोलन और मजबूत हुआ, इस आंदोलन की तरफ देश-दुनिया का ध्यान आकर्षित हुआ. जेएनयू के छात्र नेताओं के नेतृत्व में हुए इस आंदोलन को दबाने के लिए सरकार ने हर तरह की दमनकारी नीतियां अपनाईं, लेकिन हर दमन ने इस आग को और भड़काने का ही काम किया.

इन युवा आवाजों ने उस सन्नाटे को पूरी तरह से तोड़ दिया है, जो पिछले एक दशक से अधिक समय से देश पर जबरन थोपा गया था

शिक्षा में निष्पक्षता और गुणवत्ता के आधार पर चयन की यह आवाज राजनीतिक दलों की सीमाओं से पार निकल चुकी है. क्षुद्र राजनीतिक चालों में खुद को उस्ताद मानने वाली भाजपा व उसके भक्तों में इसे लेकर गहरी चिंता है. सपा से लेकर कांग्रेस तक, सभी विपक्षी दलों ने इस आंदोलन का पूरा समर्थन किया लेकिन यह बात भूलने जैसी नहीं है कि यह पूरा आंदोलन छात्रों के स्वतःस्फूर्त विद्रोह का परिणाम है. इंस्टाग्राम पर सक्रिय युवाओं ने अपनी रचनात्मकता और तीखे व्यंग्य की सक्रियता से सरकार के अहंकार को करारा जवाब दिया. इन युवा आवाजों ने उस सन्नाटे को पूरी तरह से तोड़ दिया है, जो पिछले एक दशक से अधिक समय से देश पर जबरन थोपा गया था.

फिलहाल भले प्रधान के इस्तीफे से यह थम गया हो लेकिन डर का वह माहौल, जो हमें डराए रखता था, चुप रखता था, हमेशा के लिए खत्म हो चुका है. युवाओं को यह अहसास हो चुका है कि उन्होंने उच्च शिक्षा पर एक पार्टी द्वारा अपना एजेंडा थोपने की चालबाजी को पूरी तरह से विफल कर दिया है.

धर्मेंद्र प्रधान के इस्तीफे से दो बड़ी बातें साफ हुई हैंः पहली यह कि किसानों के आंदोलन ने सरकार को तीन कानून वापस लेने पर मजबूर किया था; छात्रों के आंदोलन ने सरकार को अपनी गलती मानने और अपनी जवाबदेही कबूल करने पर विवश कर दिया है. 'जवाबदेही' जैसा शब्द हमारे राजनीतिक शब्दकोश से गायब हो चुका था. वह फिर लौट आया है.

लेकिन इस इस्तीफे का एक दूसरा पहलू भी है. मंत्रियों के मन में अब यह डर बैठ गया है कि कल को उन्हें भी अपनी नाकामियों के लिए जिम्मेदार ठहराया

जा सकता है. वे अब यह अच्छी तरह समझ चुके हैं कि प्रधानमंत्री मोदी जरूरत पड़ने पर अपनी छवि बचाने के लिए किसी को भी बलि का बकरा बनाने से पीछे नहीं हटेंगे. धर्मेंद्र प्रधान की गलती सिर्फ इतनी नहीं थी कि उन्होंने प्रधानमंत्री के हर निर्देश को आंख मूंदकर लागू किया; असली समस्या तो यह है कि प्रधानमंत्री खुद भारत की उच्च शिक्षा-व्यवस्था पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का पूर्ण नियंत्रण चाहते हैं. उन्होंने शिक्षा को पूरी तरह से रास्वंसे संघ की सांप्रदायिक विचारधारा के हाथों में सौंप दिया और हमारे शिक्षण संस्थानों में एक निम्नस्तरीय-विज्ञानविरोधी माहौल घर करने लगा है. उन्होंने उच्च शिक्षा में अत्यधिक केंद्रीकरण को बढ़ावा दिया. केंद्रीकरण भ्रष्टाचार की जननी है. इसलिए हमारी परीक्षा-व्यवस्था पूरी तरह भ्रष्ट व हेराफेरी के जाल में डूब गई है. सरकार ने शिक्षा के बजट में भारी कटौती की. कोई भी सरकार उच्च शिक्षा को इतने लंबे समय तक, इतना गहरा नुकसान पहुंचाने के बाद भी सत्ता में बनी रहे, यह संभव नहीं था लेकिन यही हुआ, क्योंकि इन्हें इस बात का पूरा भरोसा था कि उनके बाद आने वाला कोई भी मंत्री इसी विचारधारा का पालन करेगा. वे निश्चिंत थे कि चाहे कोई भी मंत्री आए, आरएसएस हर हाल में उनकी रक्षा करेगा.

प्रधानमंत्री खुद भारत की उच्च शिक्षा-व्यवस्था पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का पूर्ण नियंत्रण चाहते हैं. उन्होंने शिक्षा को पूरी तरह से रास्वंसे संघ की सांप्रदायिक विचारधारा के हाथों में सौंप दिया

यह राजनीतिक पतन और अधिक जटिल होने वाला है. सरकार शायद ही इस भारी विफलता से अब उबर पाएगी. शिक्षा-नीति को लेकर अब खुद भाजपा समर्थकों के बीच भी आपसी कलह और भ्रम की स्थिति देखने को मिलेगी. विपक्ष ने यह उम्मीद लगा रखी है कि वे राज्य सरकारों के अधिकारों पर सवाल उठाकर शिक्षा पर अपना प्रभाव अधिक मजबूत कर सकते हैं. लेकिन असली चुनौती भी यहीं है. देखना यह है कि क्या इस गठबंधन के सहयोगी दल भाजपा के इस खोखले एजेंडे को रोकने के लिए अपनी तरफ से भी कोई कदम उठाते हैं या नहीं.

यह सरकार शिक्षा को बेहतर बनाने की दिशा में पूरी तरह से दिशाहीन है. राष्ट्रीय परीक्षण एजेंसी– एनटीए– जैसी संस्थाओं की कार्यप्रणाली की पूरी जांच होनी चाहिए, क्योंकि इनके कारण नेशनल टेस्टिंग अथॉरिटी बिल जैसी योजनाएं शिक्षा को पूरी तरह केंद्रीय सत्ता का खिलौना बना चुकी हैं. यह सब एकदम ही अलोकतांत्रिक है. सरकार को अब यह समझना होगा कि देश की प्रतिभाओं को

एक साथ आगे लाना और उन्हें सही दिशा देना ही देश को आगे ले जाने का एकमात्र रास्ता है. यह काम आप एक अक्षम और दमनकारी व्यवस्था से नहीं करवा सकते हैं. यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए कि एक राजनीतिक व्यवस्था के लिए लोकप्रियता खोने का डर, आंतरिक कलह बढ़ने की आशंका, सत्ता हाथ से निकल जाने का भय सबसे डरावनी संभावनाएं हैं. संभव है कि यह आंदोलन कुछ समय के लिए शांत हो जाए, लेकिन देश के युवा एक बार फिर नई ऊर्जा और दृढ़ संकल्प के साथ वापस लौटेंगे जरूर!

इस आंदोलन की सबसे बड़ी खूबी यह रही है कि इसने 'बाहरी ताकतों' या 'विदेशी हाथ' जैसे पुराने और घिसे-पिटे सरकारी आक्षेपों को कहीं ठहरने ही नहीं दिया. देश में जब भी कोई अव्यवस्था पैदा होती है, वह सरकार की गलत नीतियों का ही परिणाम होती है. विरोध करने वाले छात्र उसके लिए जिम्मेवार नहीं होते. लेकिन हमें आगे तैयार रहना चाहिए. सरकार से अब केवल प्रतिबंधात्मक आदेशों और दमनकारी नीतियों का उपहार ही नागरिकों को मिलने वाला है. उमर खालिद जैसे छात्रों को बिना किसी ठोस आधार के जेल में बंद रखना और विभिन्न संस्थानों का लगातार उत्पीड़न करना इस सरकार की तानाशाही और क्रूर चेहरे को उजागर करता है.

यह आंदोलन शिक्षा के क्षेत्र में जवाबदेही और बदलाव की एक नई उम्मीद जगाता है. इन छात्रों ने हमें याद दिलाया है कि एक लोकतंत्र में साहसी नागरिक होने का क्या मतलब होता है; कि लोकतंत्र में प्रजा बनकर नहीं, नागरिक बनकर रहने का क्या मतलब होता है. नागरिकता की भावना रखना ही काफी नहीं है, हमें अपने देश के नैतिक मूल्यों की रक्षा के लिए आगे भी आना होगा. हमें संविधान की गरिमा को बनाए रखने की पहरेदारी करनी होगी. इन सबको पिछले वर्षों में बहुत ठेस पहुंचाई गई है. हमारे शिक्षाविदों को, जिन्होंने लंबे समय से इस दमनकारी व्यवस्था के सामने घुटने टेक रखे हैं, उन सबको अब विश्वविद्यालयों की गरिमा और स्वतंत्रता वापस पाने के लिए संघर्ष करना होगा. राजनेताओं को भी समझना होगा कि वे देश के युवाओं के प्रति उत्तरदायी हैं. ये समझते रहे कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर भले हम बार-बार हमले करें, कोई प्रतिवाद उठेगा नहीं. लेकिन वे इतिहास का यह अक्षुण्ण सच भूल गए कि दमनकारी सत्ताओं के खिलाफ उठने वाली आवाजें कभी पूरी तरह और हमेशा के लिए खत्म नहीं की जा सकती हैं.

(● गांधी मार्ग के सुपरिचित विश्लेषक प्रताप भानु मेहता का यह लेख 'इंडियन एक्सप्रेस' से साभार लिया गया है.)

*

दस्तावेज

“मेरे पागलपन में भी एक तरीका है...”

○ महात्मा गांधी

तब गांधी अपने विचारों और अपने कार्यक्रमों का पौधा भारत की धरती पर लगाने की शुरुआत कर रहे थे. यह धरती और यहां के लोग उनके लिए नये थे; ऐसे विचार और ऐसे कार्यक्रम यहां की धरती और यहां के लोगों के लिए बहुत नये, और बहुत टेढ़े थे. गांधी त्रिविध बहिष्कार का आह्वान कर—अदालतें छोड़ो-सरकारी नौकरियां छोड़ो—अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था से बाहर निकलो—इस अपरिचय को खत्म करने में लगे थे; और उनके आलोचक उन पर चौतरफा हमला करने में लगे थे. पुरानी जमीन को नया बनाने तथा उसमें नया पौधा रोपने की यह जंग तब जो शुरू हुई, वह आज भी जारी है. तब वे थे, आज हम हैं... दिल्ली के जंतर-मंतर पर नया गांधी सक्रिय है

असहयोग समिति ने असहयोग के प्रथम चरण में वकीलों द्वारा अदालतों के बहिष्कार का और माता-पिताओं तथा विद्यार्थियों द्वारा, जहां जैसा प्रसंग हो, स्कूल और कॉलेजों के बहिष्कार का कार्यक्रम रखा है. मैं जानता हूं कि अदालतों और स्कूलों का बहिष्कार करने की सलाह देने पर भी अगर लोगों ने मुझे खुल्लमखुल्ला पागल करार नहीं दे दिया है तो उसका श्रेय एक कार्यकर्ता और योद्धा के रूप में मेरी ख्याति को है.

लेकिन मैं यह दावा करने का साहस करता हूं कि मेरे पागलपन में भी एक तरीका है. यह बात बहुत आसानी से समझी जा सकती है कि सरकार इन अदालतों के माध्यम से ही अपनी सत्ता की धाक जमाती है और इन स्कूलों में ही अपने क्लर्क और दूसरे कर्मचारी तैयार करती है. अगर सरकार कुल मिलाकर न्यायप्रिय हो तो उसकी अदालतें और स्कूल बहुत अच्छी संस्थाएं हैं. लेकिन अगर वह अन्यायी हो तो ये संस्थाएं मृत्युपाश बन जाती हैं.

मेरे असहयोग विषयक विचारों की आलोचना जैसी दृढ़ता और योग्यता के साथ इलाहाबाद के 'लीडर' ने की है, वैसी दृढ़ता और योग्यता के साथ और किसी अखबार ने नहीं की है. सन् 1908 लिखी **हिंद-स्वराज्य** नाम की पुस्तिका में मैंने वकीलों के संबंध में जो विचार प्रकट किए हैं, उनकी उसने बड़ी खिल्ली उड़ाई है. लेकिन इस संबंध में मेरे विचार अब भी वैसे ही हैं; और अगर समय मिला तो मैं इन स्तंभों में उन विचारों पर और भी विस्तार से लिखने की आशा रखता हूं. लेकिन फिलहाल मैं उन पर कुछ नहीं लिख रहा हूं, क्योंकि मेरे सर्वथा निजी विचारों का मेरी इस सलाह से कोई संबंध नहीं है कि वकीलों को अपना धंधा बंद कर देना चाहिए और मैं निवेदन करूंगा कि राष्ट्रीय असहयोग के लिए वकीलों का ऐसा करना जरूरी है.

अगर सरकार कुल मिलाकर न्यायप्रिय हो तो उसकी अदालतें और स्कूल बहुत अच्छी संस्थाएं हैं. लेकिन अगर वह अन्यायी हो तो ये संस्थाएं मृत्युपाश बन जाती हैं

सरकार के साथ अदालतों के जरिए जितना सहयोग वकील करते हैं, उतना शायद और कोई नहीं करता. वकील जनता को कानून का अर्थ समझाते हैं और इस प्रकार सरकार की सत्ता को सहारा प्रदान करते हैं. यही कारण है कि उन्हें 'अदालती अफसर' कहा जाता है. उन्हें हम अवैतनिक पदाधिकारी भी कह सकते हैं. ऐसा कहा जाता है कि सरकार का सबसे प्रबल मुकाबला यदि किसी ने किया है तो वकीलों ने ही किया है. निस्संदेह, यह बात अंशतः सत्य है, लेकिन इससे इस धंधे में निहित बुराई दूर नहीं हो जाती. इसलिए जब राष्ट्र की इच्छा सरकार को ठप कर देने की है और यदि वकालत-पेशा लोग सरकार को अपनी इच्छा के सामने झुकाने में राष्ट्र से सहयोग करना चाहते हों, तो उन्हें अपना धंधा बंद कर देना चाहिए. लेकिन आलोचकों का कहना है कि अगर वकील और बैरिस्टर मेरे फैलाए जाल में फंस जाएं तो सरकार को तो इससे प्रसन्नता ही होगी. मैं ऐसा नहीं मानता. जो बात सामान्य स्थिति में लागू होती है, वही असामान्य स्थिति में लागू नहीं होती. साधारण समय में सरकार वकीलों द्वारा अपनी तीव्र आलोचना नापसंद कर सकती है, लेकिन जब उसके विरोध में कोई जोरदार

कार्रवाई की जा रही हो, ऐसे समय में वह एक भी वकील का समर्थन नहीं खोना चाहेगी और तब वकालत करते रहना, ऐसा ही समर्थन है.

मेरी योजना में धंधा बंद करने का मतलब गतिहीनता नहीं है. वकीलों को अपना धंधा बंद करके आराम नहीं करना है. उनसे यह अपेक्षा की जाएगी कि वे अपने मुवक्किलों को अदालतों का बहिष्कार करने की सलाह दें. वे लोगों का विवाद निबटाने के लिए पंचायत मंडलों की व्यवस्था करेंगे. जो राष्ट्र एक ऐसी सरकार से न्याय प्राप्त करने को कृतसंकल्प हो, जो न्याय देना नहीं चाहती है, तो उसके लिए आपसी झगड़ों में अपना समय बरबाद करने की गुंजाइश नहीं है. वकीलों से अपने मुवक्किलों को यह सत्य समझाने की अपेक्षा की जाएगी. पाठक शायद नहीं जानते होंगे कि इंग्लैंड में गत महायुद्ध के दौरान बहुत से प्रमुख वकीलों ने अपना धंधा बंद कर दिया था. अस्थायी तौर पर अपना धंधा बंद करके वकीलों ने युद्ध-प्रयत्न में, सिर्फ अपने अवकाश और मन बहलाव के समय में नहीं, बल्कि पूरे समय काम किया था. असली राजनीति कोई खेल और मन-बहलाव की चीज नहीं है. स्वर्गीय श्री गोखले अक्सर इस बात पर दुख प्रकट करते थे कि हम लोगों ने राजनीति को मन बहलाव से अधिक महत्व नहीं दिया. हम इस चीज को नहीं समझते हैं कि बहुत ही गंभीर भाव से अपना सारा समय लगाकर काम करने वाली प्रशिक्षित नौकरशाही के विरुद्ध हमारी लड़ाइयों का संचालन शौकिया राजनीतिज्ञों के हाथों में रहने से देश की कितनी बड़ी क्षति हुई है.

हम इस चीज को नहीं समझते हैं कि बहुत ही गंभीर भाव से अपना सारा समय लगाकर काम करने वाली प्रशिक्षित नौकरशाही के विरुद्ध हमारी लड़ाइयों का संचालन शौकिया राजनीतिज्ञों के हाथों में रहने से देश की कितनी बड़ी क्षति हुई है

हमारे आलोचकों का यह भी कहना है कि अपना धंधा छोड़ देने पर वकील भूखों मरेंगे. यह बात सिन्हा जैसे बड़े वकीलों के लिए नहीं कही जा सकती. वह तो कभी-कभी यूरोप-भ्रमण के लिए या अन्य उद्देश्यों से यों भी अपना धंधा बंद कर देते हैं. लेकिन जो लोग इस धंधे से मुश्किल से अपनी जीविका-भर कमा पाते हैं वे सच्चे और ईमानदार हों तो हर स्थानीय खिलाफत समिति उन्हें पूरा समय देने के बदले मानदेय के रूप में एक रकम देती रह सकती है.

अंत में मुसलमानों की बात लें. कहा गया है कि अगर वे अपना धंधा छोड़ दें तो तुरंत ही उसका लाभ हिंदू वकील उठाएंगे. मुझे आशा है कि अगर हिंदू वकील अपना धंधा बंद न करेंगे तो कम-से-कम इतने साहस का परिचय तो

अवश्य देंगे कि अपने मुसलमान भाइयों के मुवक्किलों को अपना मुवक्किल नहीं बनाएंगे. लेकिन मेरा निश्चित विश्वास है कि कोई भी धार्मिक प्रवृत्ति का मुसलमान यह नहीं कहेगा कि हम यह संघर्ष तभी चला सकते हैं जब त्याग और बलिदान में हिंदू भी हमारे साथ हों. अगर हिंदू अपने कर्तव्य का पालन करते हुए मुसलमानों का साथ देते हैं, तो इससे उनका सम्मान बढ़ेगा और दोनों समुदायों के लोगों को लाभ पहुंचेगा. लेकिन हिंदू साथ दें या नहीं, मुसलमानों को तो आगे बढ़ना ही है. अगर यह उनके लिए जीवन-मरण का सवाल है तो उन्हें उसकी जो भी कीमत चुकानी पड़े, उसका खयाल नहीं करना चाहिए. अपने सम्मान, विशेषकर धार्मिक सम्मान की रक्षा करने के लिए जो भी मूल्य चुकाना पड़े, कम ही होगा.

अपने सम्मान, विशेषकर धार्मिक सम्मान की रक्षा करने के लिए जो भी मूल्य चुकाना पड़े, कम ही होगा. मैं मानता हूं कि अगर हममें अपने बच्चों की शिक्षा स्थगित करने का साहस नहीं है तो हम इस संघर्ष में विजय पाने के उपयुक्त पात्र नहीं हैं

बलिदान वे ही कर सकते हैं जो बलिदान किए बिना नहीं रह सकते हैं. लाचारी का बलिदान कोई बलिदान नहीं होता है. वह स्थायी नहीं होगा. जिस आंदोलन का समर्थन अनिच्छुक कार्यकर्ता किसी प्रकार के दबाव के कारण करें, उस आंदोलन में सत्यनिष्ठा नहीं होती. जिस दिन एक-एक मुसलमान शांति-संधि की शर्तों को अपने प्रति किया गया व्यक्तिगत अन्याय मानने लगेगा, उस दिन खिलाफत आंदोलन की शक्ति दुर्निवार हो उठेगी. जिस समय किसी के प्रति व्यक्तिगत तौर पर कोई अन्याय किया जाता है, उस समय वह उसके प्रतिकार के लिए दूसरों की सहायता या बलिदान की प्रतीक्षा नहीं करता. निस्संदेह वह दूसरों की सहायता पाने की कोशिश करता है, लेकिन चाहे उसे सहायता मिले या नहीं, उस अन्याय के खिलाफ उसका संघर्ष चलता रहता है. अगर उसका पक्ष न्यायपूर्ण है तो ईश्वरीय नियम यही है कि उसे सहायता मिलेगी. ईश्वर असहायों का सहायक है. जब पांडव द्रौपदी की रक्षा करने में असमर्थ हो गए तब ईश्वर ने ही आकर उसकी लज्जा की रक्षा की. जब ऐसा लग रहा था कि सभी लोगों ने पैगंबर का साथ छोड़ दिया है तब उनकी सहायता खुदा ने की थी. मैं मानता हूं कि अगर हममें अपने बच्चों की शिक्षा स्थगित करने का साहस नहीं है तो हम इस संघर्ष में विजय पाने के उपयुक्त पात्र नहीं हैं.

आंदोलन के पहले चरण में सरकार की कृपा से प्राप्त पद-प्रतिष्ठा के परित्याग की बात शामिल की गई है. दरअसल कोई भी सरकार किसी के प्रति ऐसी

कृपा-दृष्टि तभी दिखाती है, जब उस व्यक्ति ने उसकी उससे भी बड़ी सेवा करके उस पर कृपा की हो. जो सरकार मुफ्त ही कृपा बांटती चलेगी उसे खराब और विवेक-शून्य सरकार माना जाएगा. जो सरकार जनता की इच्छा पर आधारित हो उससे हम अपनी सेवाओं की स्वीकृति के प्रतीक-स्वरूप कोई मामूली अलंकार पाने के लिए भी अपने प्राणों की बाजी लगा देते हैं. लेकिन जनता की इच्छा का अनादर करने वाली अन्यायी सरकार से प्राप्त की गई कोई भी जागीर गुलामी और अपमान की निशानी बन जाती है. इस कृपा-दृष्टि से हमें एक क्षण भी सोच-विचार किए बिना स्कूलों को छोड़ देना चाहिए.

मेरे लिए तो असहयोग की सारी योजना अन्य बातों के अलावा हमारी भावना की गहराई और व्यापकता परखने की एक कसौटी भी है. क्या हम खरे हैं? क्या हम कष्ट-सहन के लिए तैयार हैं? कहा गया है कि खिताबयाफ्ता लोगों से अधिक अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए, क्योंकि उन्होंने कभी किसी राष्ट्रीय मामले में हिस्सा नहीं लिया है और उन्हा.ंने जो सम्मान पाया है वह इतनी बड़ी कीमत देकर पाया है कि वे सहज ही उसे छोड़ने को तैयार नहीं होंगे. मैं आपत्ति करने वाले लोगों के सामने यह दलील पेश करता हूं और उनसे पूछता हूं कि स्कूली बच्चों के माता-पिताओं और कॉलेज के वयस्क छात्रों के बारे में उनका क्या कहना है? उनका तो खिताबयाफ्ता लोगों की तरह सरकार से कोई वैसा गहरा संबंध नहीं है. प्रश्न यह है कि उनकी भावनाएं इतनी तीव्र हैं या नहीं कि वे स्कूली पढ़ाई का त्याग कर सकें?

हर गांव को अपने बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था खुद ही करनी चाहिए. मैं तो इस मामले में सरकारी सहायता पर निर्भर करना बिल्कुल पसंद नहीं करूंगा

मेरे विचार से स्कूल छोड़ देने में कोई त्याग और बलिदान है ही नहीं. अगर हम सरकार से पूरी तरह से स्वतंत्र रहकर अपनी शिक्षा की भी व्यवस्था नहीं कर सकते तो हम असहयोग के बिल्कुल अनुपयुक्त हैं. हर गांव को अपने बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था खुद ही करनी चाहिए. मैं तो इस मामले में सरकारी सहायता पर निर्भर करना बिल्कुल पसंद नहीं करूंगा. अगर हममें सच्ची जागृति आ जाए तो बच्चों की पढ़ाई में एक दिन का भी व्यवधान न पड़े. जो शिक्षक आज सरकारी स्कूलों को चला रहे हैं वे अगर त्यागपत्र दे दें तो वे हमारे राष्ट्रीय स्कूलों का संचालन-भार संभाल सकते हैं और हमारे बच्चों में से अधिकांश को बजाय मामूली क्लर्क बनाने के, उन्हें जैसी शिक्षा की जरूरत है, उन चीजों की शिक्षा दे सकते हैं, बेशक, मैं अलीगढ़ कॉलेज से इस मामले में नेतृत्व की अपेक्षा

रखता हूं. अगर हम मदरसों को खाली कर दें तो उसका नैतिक प्रभाव बड़ा जबरदस्त होगा और मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं कि हिंदू माता-पिता और विद्यार्थी अपने मुसलमान भाई-बहनों का अनुकरण करेंगे.

दरअसल माता-पिता और विद्यार्थी किताबी ज्ञान के पीछे न पड़कर अपनी धार्मिक भावना का खयाल करें, इससे शानदार शिक्षा और क्या हो सकती है! इसलिए जो विद्यार्थी स्कूलों और कॉलेजों से हटा लिए जाएं, उनकी किताबी शिक्षा का अगर तत्काल कोई प्रबंध नहीं किया जा सकता तो जिस उद्देश्य के लिए उन्हें सरकारी स्कूल छोड़ने की जरूरत पड़ सकती है, उस उद्देश्य के लिए स्वयंसेवक के रूप में काम करना एक लाभदायक शिक्षा सिद्ध हो सकती है. कारण वकीलों की तरह ही विद्यार्थियों के मामले में भी मेरी कल्पना यह नहीं है कि वे स्कूल छोड़कर निष्क्रिय जीवन बिताएं. स्कूल छोड़ने वाले सभी लड़कों से, अपनी योग्यता के अनुसार, इस आंदोलन में हाथ बंटाने की अपेक्षा की जाएगी.

*

राज्य अपने ही लोगों को पहचानने से इंकार कर रहा है

○ राम सेवक शर्मा

अब बात यहां पहुंचा दी गई है कि हमारी नागरिकता का निर्धारण व संरक्षण संविधान नहीं करेगा, सरकार करेगी. सरकार करेगी तो वह यह भी देखेगी कि किसे नागरिकता देना उसके हित में है, किसे नहीं देना उसके हित में है. तो हम नागरिक सत्ता की शतरंज के मोहरे बनाए जा रहे हैं जबकि संविधान ने बताया था कि हम नागरिक अब सत्ता के जनक व प्रहरी हैं. यह खेल हमें लोकतंत्र से खारिज करने का खेल है

पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक गांव में 60 साल के एक खेतिहर मजदूर की कल्पना कीजिए. उसका जन्म 1960 के दशक में घर पर ही हुआ और मतदाता बनने की योग्यता हासिल करने के बाद उसने अपने जीवन के हर चुनाव में वोट दिया है. मतदाता सूची के विशेष गहन पुनरीक्षण (सर) के दौरान एक अधिकारी उससे उसकी जन्मतिथि, निवास और नागरिकता का सबूत मांगता है. उसके पास जन्म प्रमाणपत्र नहीं है, क्योंकि किसी ने उसका जन्म दर्ज नहीं कराया था. उसे बताया जाता है कि उसका राशन कार्ड उसके निवास का प्रमाण नहीं है; उसका आधार-कार्ड जो कई साल पहले उसके घर के पते पर जारी हुआ था, न उसकी उम्र, न पता, न ही नागरिकता साबित करता है. उसके पास कभी पासपोर्ट नहीं था और उसने स्कूल भी पूरा नहीं किया. वह आज खाली हाथ राज्य के सामने खड़ा है, और उस पर यह साबित करने का बोझ है कि वह विदेशी नहीं है.

इसके पीछे राज्य की रची हुई तीन नाकामियों का हाथ है. इनमें से किसी के लिए भी कोई एक सरकार या कोई एक पार्टी जिम्मेदार नहीं है. यह दशकों की सामूहिक अनदेखी का नतीजा है – हर जन्म को दर्ज करने जैसे राजनीतिक फायदे से हीन, बेरौनक, गैर-फैशनेबल काम की हर किसी ने अनदेखी की.

राजनीतिक धंधेबाजों को यह कभी भी फायदे का काम नहीं लगा.

जन्म और मृत्यु पंजीकरण अधिनियम 1969 में आया. यह अधिनियम कहता है कि हर जन्म को, 21 दिनों के भीतर अनिवार्य रूप से पंजीकृत किया जाए. यह राज्य का काम था जिसे उसने दशकों तक नहीं किया. 2005-06 तक का हाल यह है कि पांच साल से कम उम्र के मात्र 41% बच्चों का ही पंजीकरण हो सका. 2000 के दशक के मध्य से पहले भारत में घर पर होने वाले ज्यादातर जन्म– राष्ट्रीय आंकड़े बताते हैं कि हमारे यहां 39% डिलीवरी आज भी घर पर ही होती है – कहीं दर्ज होते ही नहीं थे. आज राहत की बात है कि 98% नवजातों के जन्म पंजीकृत हो रहे हैं. आज जो हो रहा है वह, कल जो नहीं हुआ उस गलती को तो ठीक नहीं कर सकता है! ऐसा हाल हो देश का तो आप कैसे पता करेंगे कि मौजूदा मतदाता सूची में वयस्कों की संख्या कितनी है?

पंजीकरण आपका हुआ नहीं, आपके हाथ में दूसरा कोई प्रमाण-पत्र है नहीं! हमें समझना चाहिए कि पंजीकरण व प्रमाण-पत्र ये दोनों कानूनन दो अलग-अलग काम हैं, और दशकों तक दूसरा काम किसी ने किया नहीं. जो आपने किया ही नहीं, उसकी मांग आप कैसे कर सकते हैं? बाबू लोग (जो अक्सर शासक दल के खैरख्वाह होते हैं!) बड़ी अकड़ से बोल रहे हैं कि जन्म के समय जारी जन्म प्रमाण-पत्र ही आपके जन्म की तारीख का असली सबूत है. अगर यही करना है तो इसका नतीजा भी तो आपको समझना चाहिए. ऐसा कोई प्रमाण-पत्र देश के 8 में से 1 मतदाता के पास हो तो हो. बाकी हमारे 85 करोड़ नागरिकों के पास ऐसा कोई प्रमाण-पत्र होगा ही नहीं, क्योंकि आपने ऐसा कोई प्रमाण-पत्र बनाया ही नहीं. ऐसी परीक्षा, जो नागरिकों की बहुसंख्या पास ही न कर सके, वह परीक्षा नहीं है; वह लोगों को मतदान से वंचित करने की सोची-समझी युक्ति है. मैं कहता हूं कि यह नागरिकों का बहिष्कार करने की मशीन है.

जो नागरिकों की बहुसंख्या पास ही न कर सके, वह परीक्षा नहीं है; वह लोगों को मतदान से वंचित करने की सोची-समझी युक्ति है

जब आधार-कार्ड का काम शुरू ही हुआ था, मैं उसका गवाह हूं. मैं तब यूआईडीएआई का संस्थापक महानिदेशक था. अपने उस अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूं कि बहुत से लोगों को अपनी जन्मतिथि तक का पता नहीं था. हमने इसे 'दस्तावेज मौजूद होने पर सत्यापित' और 'कोई दस्तावेज न होने पर वैध घोषित या अनुमानित' ऐसे दो हिस्सों में बांट कर दर्ज किया था. गांवों

में ज्यादातर लोग बाद वाली श्रेणी में आते थे. लोग अपनी उम्र का हिसाब उस साल से लगाते थे, जिस साल बड़ा अकाल पड़ा था! इसी वजह से बहुत से भारतीयों का जन्मदिन एक जनवरी होता है. हम भी क्या करते, जब सिर्फ साल का ही अंदाजा हो आदमी के पास तो सिस्टम वही तारीख दर्ज कर देता है. जब हम जानते हैं कि जमीनी हकीकत यह है तब ऐसे लोगों से सटीक, दस्तावेजी जन्मतिथि की मांग कड़ाई से करना ईमानदारी नहीं है. यह उन्हें मतदाता-सूची से बाहर करने की सोची-समझी चाल है.

हमने कभी अपने नागरिकों को नागरिकता का दस्तावेज नहीं दिया है. भारत में नागरिकता-कार्ड जैसा कोई दस्तावेज होता ही नहीं है. पासपोर्ट, जो 8% से भी कम भारतीयों के पास है, उसके बारे में अभी-अभी जून के महीने में सरकार की तरफ से कहा गया कि – विदेश मंत्रालय ने कहा– कि हमारा पासपोर्ट नागरिकता का प्रमाण-पत्र नहीं बल्कि यात्रा का दस्तावेज मात्र है. अब भारतीय नागरिक की स्थिति क्या बनती है, आप समझिए. 'आधार' अपने कानून के आधार से ही नागरिकता का प्रमाण-पत्र नहीं है. हमारा वोटर-कार्ड या हमारा पैन-कार्ड भी नागरिकता का प्रमाण-पत्र नहीं है. नागरिक रजिस्टर बनाने का हमारा हर प्रयास विफल ही रहा है– एमएनआईसी पायलट प्रोजेक्ट बंद हो गया; असम ने इसी कसरत में आपने 19 लाख लोगों को नागरिकता से बाहर कर दिया और सारी कवायद से हासिल कुछ नहीं हुआ. अंततः यह भी राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर की तरह हवा-हवाई हो गया. निवासियों और गैर-नागरिकों का रजिस्टर बन ही नहीं पाया, क्योंकि गृह मंत्रालय ने पाया कि नागरिकता की क्षेत्रीय जांच व्यावहारिक है ही नहीं. आप नागरिक से उसकी नागरिकता का वह सबूत मांग रहे हैं जो राज्य ने उसे कभी दिया ही नहीं. जो आपने दिया ही नहीं, वह वैसा प्रमाण लाएगा कहां से?

और अब हाल यह है कि हम अपने ही वैधानिक दस्तावेजों को नकार रहे हैं. सुप्रीम कोर्ट में लंबित एक याचिका में कहा गया है कि 'आधार' को सिर्फ पहचान के प्रमाण के रूप में माना जाए– उम्र, पता या नागरिकता के प्रमाण के रूप में नहीं. कानून खुद ही कहता है कि एक मतदाता को सामान्यतः देश का निवासी होना चाहिए. दूसरी तरफ जनप्रतिनिधित्व अधिनियम कहता है कि आपका घर का मालिक होना आपकी नागरिकता को साबित नहीं करता है; और आपकी अस्थायी अनुपस्थिति नागरिकता के आपके दावे को खत्म भी नहीं करती. हर दस्तावेज जो प्रचलन में है, कुछ तो मतलब रखता होगा? राशन-कार्ड खुद कहता है कि यह निवास का प्रमाण नहीं है; किसी दूसरे के नाम का बिजली बिल भी मेरे होने का प्रमाण नहीं है; आसानी से फर्जी बनवा लिया जा सकने

वाला किरायानामा भी कोई प्रमाण नहीं है. आप देखिए कि हमारा आधार-कार्ड आपने ही भौतिक रूप से धारक के पते पर, स्पीड पोस्ट से पहुंचाया था. यह अत्यंत महंगा माध्यम इसलिए इस्तेमाल किया गया था ताकि यह प्रमाणित किया जा सके कि कार्ड उस पते पर पहुंचा है जिसका दावा वह व्यक्ति कर रहा है. निवास का वह दस्तावेज बन गया जिसे अब राज्य स्वीकार करने को तैयार नहीं है. हम खुद ही उस पते को नकार रहे हैं, जिसके लिए हमने महंगी डिलीवरी का सारा तंत्र खड़ा किया था.

इन तीनों नाकामियों को जोड़ दीजिए और फिर नागरिक की बेबसी का अनुमान लगाइए! राज्य न उसकी उम्र मानने को तैयार है, न उसका निवास कबूल करता है, न नागरिकता को स्वीकृति देता है; और अब बनाया गया विदेशी अधिनियम उस पर ही यह साबित करने का बोझ डालता है कि वह विदेशी नहीं है. इसका सीधा मतलब यह हुआ कि कोई भी सरकारी अधिकारी, किसी के भी इशारे पर किसी को भी संदिग्ध नागरिक या अवैध प्रवासी करार दे सकता है. उसके पास ऐसे कागज कहां से आएंगे, जो राज्य ने उसे कभी दिए ही नहीं?

इसका सीधा मतलब यह हुआ कि कोई भी सरकारी अधिकारी, किसी के भी इशारे पर किसी को भी संदिग्ध नागरिक या अवैध प्रवासी करार दे सकता है

यह निहिलिज्म है– वह करतूत है जो नागरिकों को पागल बना रही है. यह शासन करने का तरीका नहीं है. किसी ऐसी नाकामी के लिए नागरिक से जवाब मांगना अन्याय है, जो उसकी नहीं, व्यवस्था की नाकामी है. चुनाव आयोग का एसआईआर ठीक यही अन्याय करोड़ों आम मतदाताओं पर थोप रहा है– एक-के-बाद दूसरे राज्य का नंबर आता जा रहा है और संविधान की प्रहरी कहलाने वाली न्यायपालिका संविधान की किताब बंद कर राममंदिर में खड़ी है.

(● भारतीय प्रशासनिक सेवा के उच्चाधिकारी रहे राम सेवक शर्मा आधार-कार्ड परियोजना के महानिदेशक रहे हैं.)

*

ऐतिहासिक सच

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को मिला नेहरूजी का वह आमंत्रण जो कभी दिया ही नहीं गया था...

○ धीरेंद्र के. झा

दावा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का है और अपने स्वयंसेवकों द्वारा उसने सालों-साल इसे प्रचारित भी किया है कि 1962 में, चीनी हमले के बाद, भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने संघ की राष्ट्रभक्ति से कायल होकर उसे गणतंत्र दिवस की परेड में भाग लेने का आमंत्रण भेजा था, और संघ ने पूरी तैयारी से उस परेड में भाग लेकर अपना राष्ट्रीय कर्तव्य निभाया था.

यह झूठ है - सफेद झूठ!

यह झूठ इतना फैलाया व दोहराया गया कि भोलेपन में कई लोगों ने इसे सच मान लिया. इस झूठ का सच बताता यह आलेख सभी लोकतांत्रिक शक्तियों का आह्वान करता है कि वे इसे पढ़ें और अधिकाधिक लोगों को पढ़ाएं भी ताकि ऐसे झूठ से खुद को समाज स्थापित करने की संघ की कोशिशों की पोल खुल सके

बार-बार दोहराया जाने वाला यह दावा कि प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने 1963 की गणतंत्र दिवस परेड में भाग लेने के लिए, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को आमंत्रित किया था, और कुछ नहीं, भारत के समकालीन इतिहास में एक झूठ को बिठा देने की संघीय कवायद भर है. आर्काइव के रिकॉर्ड इस दावे को खारिज करते हैं, न केवल खारिज करते हैं बल्कि एक दूसरी

ही परिस्थिति के बारे में बताते हैं जिससे संघ का मूल चरित्र उजागर होता है. संघ द्वारा निश्चित निर्देश पर उसके कुछ सदस्य अपनी पोशाक में उस साल की गणतंत्र दिवस परेड में घुस आए थे. उस साल की परेड वास्तव में एक किस्म का नागरिक मार्च था, जिससे उनकी संघी योजना सफल हो सकी थी.

संघ के सदस्य और उसकी मीडिया टीम में रहे रतन शारदा ने 2018 में प्रकाशित अपनी किताब 'आरएसएस 360' में दावा किया है कि राष्ट्रीय आपातकालीन परिस्थितियों में आरएसएस की भूमिका का सम्मान करते हुए पंडित नेहरू ने 1963 की गणतंत्र दिवस परेड में भाग लेने के लिए संघ को आमंत्रित किया था. किताब में यह भी दावा है कि महज तीन दिन की नोटिस पर संघ ने अपने 3000 सदस्यों को जुटा कर उस परेड में भाग लेने की जिम्मेवारी निभाई.

जून 2018 में पूर्व राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी संघ के आमंत्रण पर नागपुर स्थित उनके मुख्यालय में पहुंचे थे. तब कांग्रेस के भीतर भी और देश में भी उनके इस निर्णय की आलोचना हुई थी. आरएसएस के सदस्यों और उसके समर्थकों ने प्रणव मुखर्जी के कदम की आलोचना करने वालों के खिलाफ जवाहरलाल नेहरू के आमंत्रण का हवाला देते हुए सबको जवाब दिया था. अभी हाल में जब केरल के राज्यपाल आरिफ मोहम्मद खान त्रिशूर में आरएसएस के एक नेता के घर सरसंघचालक मोहन भागवत से मिलने गए तो उसकी भी सार्वजनिक निंदा हुई थी और तब आरिफ मोहम्मद खान ने भी जवाहरलाल नेहरू के आमंत्रण की आड़ ली थी.

उस साल की परेड वास्तव में एक किस्म का नागरिक-मार्च था, जिससे उनकी संघी योजना सफल हो सकी थी

इन सबने मिलकर जवाहरलाल नेहरू के आमंत्रण को इतिहास बना देने की कोशिश की. झूठ बोलो, बार-बार झूठ बोलो तो वह सच मान लिया जाता है, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और उनके जी हुजूरों ने भी यह आदर्श-नीति संघ से ही सीखी है.

सच यह है कि ऐसा कुछ भी नहीं हुआ था. आर्काइव के रिकॉर्ड बताते हैं कि 1962 में चीनी हमले में मिली दयनीय पराजय के बाद देश में मायूसी भी थी और हताशा भी. पराजय कई स्तर पर व्यक्ति व समाज को पराजित करती है. ऐसी ही पराजित मानसिकता से घिरा तब का रक्षा मंत्रालय इस बात पर विचार करने लगा था कि 1963 की गणतंत्र दिवस परेड स्थगित कर दी जाए. यह बात जवाहरलालजी के कानों तक पहुंची. ऐसी राष्ट्रीय मनोभूमिका से वे कतई सहमत नहीं हुए. 10 दिसंबर 1962 को नेहरू ने तत्कालीन रक्षामंत्री

यशवंतराव चव्हाण को एक लंबा पत्र लिखा. उन्होंने लिखा कि रिपब्लिक डे परेड न करने की बात कहां से आई? हमें आत्मविश्वास खोना नहीं हैः

''मैं इस बात से सहमत हूं कि आयोजन में अनावश्यक खर्च से हर हाल में बचा जाना चाहिए. इस बात से भी मेरी सहमति है कि देश के अलग-अलग हिस्सों में तैनात सेना को अभी दिल्ली नहीं बुलाया जा सकता. लेकिन मैं यह नहीं समझ पा रहा हूं परेड क्यों नहीं होनी चाहिए! हम अपनी परेड में दिल्ली में स्थित सेना और नागरिकों को क्यों न जोड़ें! मैं तो इसे अच्छे नागरिक-मार्च का अवसर बनाना चाहता हूं. ऐसी परेड होनी चाहिए जिसमें बड़ी संख्या में लोग भाग लें. होमगार्ड और एनसीसी इसमें जरूर हो और दिल्ली की अन्य स्वयंसेवक इकाइयां भी हों. इस परेड में स्कूल और कॉलेजों के बच्चों की भागीदारी के साथ, ट्रेड यूनियनों और अन्य संगठनों के लोग भी शामिल हों.''

नेहरू ने आगे लिखा हैः ''सभी लोगों को परेड से पूर्व ट्रेनिंग दी जाए, यह जरूरी नहीं है. यह भी जरूरी नहीं है कि वे एक साथ कदमताल करें. बस, वे सभी एक साथ मार्च करें, तो मुझे पूरा विश्वास है कि एक मजबूत संदेश देश में जाएगा, जिससे सभी प्रेरित होंगे.''

नागरिकों का यह मार्च तड़क-भड़क और दिखावे के बगैर था, क्योंकि राष्ट्रीय आपातकाल की स्थिति थी और सरकारी खर्च में कमी करने की जरूरत थी

इसके अगले दिन यानी 11 दिसंबर 1962 को नेहरू ने अपना यह प्रस्ताव कांग्रेस संसदीय दल के सामने रखा. उन्होंने कहाः ''यह सुझाव दिया जा रहा है कि हम परेड न करें. मुझे यह ठीक नहीं लगता. मेरी राय ऐसी है कि इस परेड को एक सैन्य आयोजन के रूप में नहीं बल्कि नागरिक आयोजन के रूप में लिया जाए. सांसदों से भी परेड में शामिल होने की अपील की जाए.''

इस तरह बात तय हुई कि 1963 की गणतंत्र दिवस परेड को, जनता को परिचालित करने के उद्देश्य से नागरिकों की परेड के रूप में आयोजित किया जाए. 28 जनवरी 1963 को प्रकाशित 'हिंदुस्तान टाइम्स' की एक रिपोर्ट में लिखा है कि परेड में एक लाख से अधिक नागरिकों ने मार्च किया और भारत के सम्मान और उसकी संप्रभुता को चीन की धोखाधड़ी और आक्रामकता से बचाने के लिए प्रतिबद्धता व्यक्त करते हुए नारे लगाए. उसी रिपोर्ट में आगे लिखा गया है कि सेना ने बहुत कम संख्या में इस परेड में भाग लिया और ताकि जनता को याद रहे कि वह चीनी घुसपैठ के खिलाफ सीमा पर डटी हुई है. नागरिकों का यह मार्च तड़क-भड़क और दिखावे के बगैर था, क्योंकि राष्ट्रीय आपातकाल की स्थिति थी और सरकारी खर्च में कमी करने की जरूरत थी.

इस नागरिक मार्च में नेहरू और उनके मंत्रिमंडल के सदस्यों तथा सांसदों ने भी भाग लिया था. 27 जनवरी को प्रकाशित 'टाइम्स ऑफ इंडिया' की रिपोर्ट में बताया गया है:

''नागरिक मार्च की पहली पंक्ति में संसदीय मामलों के मंत्री सत्यनारायण सिन्हा, रक्षामंत्री वाई.बी चव्हाण, लोकसभा के अध्यक्ष हुकुम सिंह, प्रधानमंत्री नेहरू, वित्तमंत्री मोरारजी देसाई और यातायात एवं संचारमंत्री जगजीवन राम मौजूद थे. सत्यनारायण सिन्हा और जगजीवन राम दो छोरों पर राष्ट्रीय झंडा उठाए हुए थे. नेहरू और अन्य ने राष्ट्रपति के मंच के सामने से मार्च करते हुए अपने हाथ जोड़ लिए.''

महात्मा गांधी की हत्या के बाद आरएसएस की विश्वसनीयता खत्म हो चुकी थी. भारतीय समाज से उसकी बहिष्कृत जैसी स्थिति थी. वह अपनी सामाजिक-राजनीतिक व वैधानिक स्वीकृति की खोज में था. वह अब कोई भी अवसर खोना नहीं चाहता था. इसलिए नागरिक-मार्च की जवाहरलालजी की बात को उसने लपक लिया. नागरिक-मार्च सबके लिए खुला था तो संघ के लिए बंद कैसे होता! संघ ने भारतीय समाज में इस वैधानिक रास्ते से प्रवेश पाने की चतुराई दिखाई. वह फुर्ती से तैयार हो गया. नेहरू ने बाद में बताया भी कि आरएसएस ने न केवल दिल्ली से बल्कि आस-पड़ोस के इलाकों से भी अपने सदस्यों को मार्च के लिए जुटाने के प्रयास किए.

सत्यनारायण सिन्हा और जगजीवन राम दो छोरों पर राष्ट्रीय झंडा उठाए हुए थे. नेहरू और अन्य ने राष्ट्रपति के मंच के सामने से मार्च करते हुए अपने हाथ जोड़ लिए

4 फरवरी 1963 को आरएसएस के मुखपत्र 'ऑर्गेनाइजर' ने रिपोर्ट दी: दिल्ली के 2000 सदस्य अपने गणवेश में यानी सफेद शर्ट और खाकी पतलून, कमर पर बेल्ट और सिर पर काली टोपी लगाए, बूट पहने परेड में शामिल हुए और दिल्ली नागरिक समूह में आकर्षण का केंद्र रहे.

नेहरूजी तक यह बात भी पहुंची. 7 जनवरी को कांग्रेस संसदीय दल की बैठक में उन्होंने कहा: ''एक दिन पहले कुछ कांग्रेसी मेरे पास आए थे. उन्होंने बतलाया कि संघ गाजियाबाद, मेरठ और अन्य जगहों से अपने सदस्यों को जुटा रहा है ताकि बड़ी संख्या में प्रभावी उपस्थिति दर्ज करा सके. वे कह रहे थे कि कांग्रेसियों के पास उनके सदस्यों की तरह वर्दियां तो नहीं हैं. मैंने उनसे कहा कि देखिए, मैं संघ को आने से तो नहीं रोक सकता, क्योंकि किसी को भी रोकना सही नहीं होगा. नागरिकों के लिए इस मार्च में शामिल होने के लिए कोई ड्रेस कोड नहीं रखा गया है. मैंने इतना ही कहा है कि बैंड बाजा या



पार्टियों के प्राइवेट बैंड लेकर शामिल मत होइए. इसके अलावा मैंने कुछ मना नहीं किया. वे सादे कपड़ों में आएं या वर्दी पहन के आएं, मैं उन्हें नहीं रोक सकता.''

नेहरू ने उस अफवाह का भी जिक्र किया, जिसमें कहा जा रहा था कि संघ के 25 हजार सदस्य परेड में भाग लेंगे. वे कहते हैंः ''अफवाह थी कि आरएसएस के 25 हजार सदस्य आएंगे. आए तो सिर्फ दो हजार, और वह भी बहुत तड़क-भड़क के साथ. हम उनको नहीं रोक सकते थे. सरकार के हाथ में यह मामला तब तक ही था, जब तक जनता नहीं पहुंची थी. उसके बाद यह मामला प्रत्यक्ष रूप से सरकार के हाथ में नहीं रह गया था. मामले को मेयर नूरुद्दीन अहमद संभाल रहे थे और उन्होंने अच्छा बंदोबस्त किया था''.

चूंकि उस गणतंत्र दिवस समारोह में स्थानीय लोगों के अलग-अलग वर्गों का मार्च होने जा रहा था, इसलिए दिल्ली के मेयर नूरुद्दीन अहमद को सारा अनुशासन बनाने की जिम्मेदारी दी गई थी. अहमद ने इस काम में बहुत मेहनत की और उन्होंने सभी ट्रेड यूनियनों, कॉलेजों और स्कूलों से संपर्क बनाया था ताकि एक सफल मार्च का आयोजन किया जा सके. लगता है कि नूरुद्दीन अहमद बिना भेदभाव के लोगों से संपर्क कर रहे थे. महात्मा गांधी की हत्या के बाद आरएसएस पर लगा प्रतिबंध हटे हुए भी कई साल हो चुके थे. इसलिए उन्होंने भारतीय मजदूर संघ को भी, जो आरएसएस का ट्रेड यूनियन है, परेड में भाग लेने का निमंत्रण दे दिया. इसके अलावा उन्होंने एनआईटीयूसी, एआईटीयूसी और यूटीयूसी को भी मार्च में भाग लेने का अनुरोध भेजा था.

आरएसएस के लोगों ने अपनी भागीदारी मार्च के दौरान छुपा कर रखी. वे अपने साथ कोई बैनर नहीं लाए थे, न कोई तख्ती थी और न उन्होंने अपने संगठन का भगवा झंडा ही उठा रखा था. उनका जत्था एक लाख की बड़ी भीड़ में मिल गया. प्रशासन ने संघ के भारतीय मजदूर संघ को बुलावा भेजा ही था तो उनकी उपस्थिति पर शक करने जैसी कोई बात भी नहीं थी. इसीलिए अधिकांश समाचार पत्रों ने उनकी उपस्थिति को अलग से दर्ज ही नहीं किया. संघ के लोग अपने गणवेश में थे, तो उनकी उपस्थिति लोगों और मीडिया में अलग से दिखाई दी. हिंदी समाचार पत्र 'हिंदुस्तान' ने संघ के सदस्यों का मार्च करता फोटो 28 जनवरी 1963 के अंक में छापा था. लेकिन उसने भी सावधानी बरती और इसे अलग से नहीं, बल्कि एक फोटो फीचर के हिस्से के रूप में दिखाया.

'हिंदुस्तान' में प्रकाशित उस फोटो की एक खास बात थी जिसका जिक्र अलग से करना जरूरी है– आरएसएस के सदस्यों ने मार्च करते हुए अपना भगवा नहीं, राष्ट्रीय तिरंगा झंडा उठा रखा था. संभवतः यह पहली बार था जब वैधानिकता के लिए तड़प रहे संघ ने राष्ट्रीय झंडे को सार्वजनिक रूप से सम्मान दिया था. उस वक्त तक और आगे लंबे वक्त तक संघ ने तिरंगे को स्वीकार नहीं किया. 1950 में, जब उस पर से प्रतिबंध हटाया गया था तो उसने राष्ट्रीय झंडे का सम्मान करने की प्रतिबद्धता व्यक्त की थी, लेकिन संघ की संस्कृति के अनुकूल ही वह उसकी चाल थी या आज की सरकारी भाषा में जुमला थी. 'हिंदुस्तान' में प्रकाशित जिस फोटो को सामने रख कर आरएसएस दावा करता है कि नेहरू ने 1963 की गणतंत्र दिवस परेड में उसे आमंत्रित किया था, उसके पीछे का सच संघ को मौकापरस्त व षड्यंत्रकारी साबित करता है.

*

चिंतन

आज का और कल का सर्वोदय

○ पराग चोलकर

विचार वही जीवित है जो समय की चुनौतियों को पहचानता भर नहीं है, उनका समुचित प्रत्युत्तर भी देता है. सर्वोदय की संकल्पना इसी अर्थ में एक जीवंत यात्रा करती हुई हम तक पहुंची है और आगे का रास्ता भी बता रही है

हर साल 15 नवंबर को, विनोबा की पुण्यतिथि के दिन हम यहां इकट्ठा होते हैं. उनको याद करते हैं, उनका गुणसंकीर्तन करते हैं, उनके विचारों को और कार्यक्रमों को भी याद करते हैं ताकि हमें जो करना चाहिए, उस बारे में कुछ प्रकाश मिल सके.

विनोबा के चिंतन से जीवन का शायद ही कोई क्षेत्र अछूता रहा हो. धर्म, अध्यात्म, साहित्य, शिक्षा, संस्कृति, समाजशास्त्र, मानसशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र इन सभी क्षेत्रों में उन्होंने गहरा और मौलिक चिंतन किया, अनूठी अवधारणाएं दीं. उनके आलोक में कई व्यावहारिक कार्यक्रम भी दिए. इन सबका अंतिम उद्देश्य एक ही थाः अहिंसक समाज की स्थापना. इसके लिए साधन उन्होंने बतायाः लोकशक्ति का निर्माण! लोकशक्ति, जो हिंसाशक्ति की विरोधी होगी और दंडशक्ति से भिन्न होगी.

यह काम एक नहीं, कई जीवनदान मांगता है; एक पीढ़ी नहीं, कई पीढ़ियां मांगता है. 1954 में विनोबा ने बोधगया में जीवनदान का जो सूत्र दिया था, वह थाः भूदान-यज्ञ-मूलक, ग्रामोद्योगप्रधान अहिंसक क्रांति! इस सिलसिले में कई कार्यक्रम आएं, जिनका निचोड़ 1963 में त्रिविध कार्यक्रम के रूप में प्रकट हुआ- ग्रामदान, ग्रामाभिमुख खादी और शांतिसेना. आज भी ये कार्यक्रम प्रासंगिक हैं. बेशक साठ साल बाद उसका नवसंस्करण करना होगा.

इनमें एक कार्यक्रम था शांतिसेना. हिंसा फूटेगी तो उसे बुझाने का काम शांतिसेना करेगी; सामान्य समय में हिंसा न फूटे, इस पर भी वह ध्यान देगी. हिंसा का उबाल रोकना हो, तो हिंसा की जड़ें नष्ट करनी पड़ेंगी. ये जड़ें मनुष्य के मानस में हैं, समाज की रचना में हैं. ये मिलकर मनुष्य को खोखला करते हैं, उसकी नैतिक उन्नति रोकते हैं. मन में दबी यह हिंसा निकलनी चाहिए, समाज की संरचनात्मक

में गुंथी यह हिंसा नष्ट होनी चाहिए. इसलिए वे एक तरफ चित्तशुद्धि पर जोर देते थे, तो दूसरी तरफ रचनात्मक हिंसा को निर्मूल करने के कार्यक्रम भी देते थे.

मनुष्य के मन में पनपने वाली हिंसा की जड़ों को सींचकर संरचनात्मक हिंसा को स्थायी और सुरक्षित करने का सपना पालने वाली एक शक्ति है-संप्रदायवाद! आजादी के पूर्व इसका भयानक रूप हमने देखा. इसने समाज को तोड़ा और फिर इस देश के टुकड़े किए. लाखों जीवन उद्‍ध्वस्त हुआ, मानवता शर्मसार हुई. इतनी बड़ी कीमत देकर जो इस्लामिक राष्ट्र बना, उसका क्या हश्र हुआ है, यह हमारी आंखों के सामने हैं. देश का एक टुकड़ा इस्लामिक राष्ट्र बन गया, तो अब बचा हुआ देश हिंदू राष्ट्र बनना चाहिए, ऐसा चाहने वाले लोग भी उस समय थे ही. लेकिन गांधीजी ने इसका पुरजोर विरोध किया. उन्होंने कहा कि यह देश यहां रहने वाले सभी लोगों का है, और इसे ऐसा ही रहना चाहिए. इसके लिए उन्होंने जान की बाजी तक लगा दी. बंगाल, खासकर नोआखली में उन्होंने जो किया, वह न केवल उनके जीवन का, बल्कि हमारी परंपरा का एक प्रेरक और रोमहर्षक अध्याय है.

देश का एक टुकड़ा इस्लामिक राष्ट्र बन गया, तो अब बचा हुआ देश हिंदू राष्ट्र बनना चाहिए, ऐसा चाहने वाले लोग भी उस समय थे ही. लेकिन गांधीजी ने इसका पुरजोर विरोध किया

1948 में, गांधीजी की हत्या के बाद सेवाग्राम में उन्हें मानने वाले कार्यकर्ता इकट्ठा हुए और उन्होंने परिस्थिति के संदर्भ में आगे की राह पर विचार-मंथन किया. इस सम्मेलन में विनोबा ने जिस संगठन द्वारा गांधी-हत्या को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष चालना दी गई थी, उस संगठन को 'फासिस्ट ढंग' का संगठन कहा था. यह बड़े मार्के की बात है.

विनोबा जब यह कह रहे थे, उसके कुछ वर्ष पूर्व ही दुनिया ने फासिज्म द्वारा किए उत्पातों का अनुभव किया था. फासिज्म सिर्फ सत्ता चाहता है– संपूर्ण सत्ता! सत्ता के लिए उसे किसी भी हथकंडे से गुरेज नहीं होता. वह वंशवाद की चादर ओढ़ सकता है, धर्म का नाम ले सकता है, लोगों की आस्था का बेजा इस्तेमाल कर सकता है. 'समाजवाद' शब्द के प्रति लोगों का आकर्षण देखा, तो उसने खुद को समाजवादी घोषित कर दिया था. वैसे समाजवाद से उसका कोई लेना-देना नहीं था. फासिज्म का खतरा तब इतना करीब आ पहुंचा था कि आजादी के लिए लड़ने वाले गांधी, नेहरू सरीखे लोकनेताओं ने फासिज्म की न केवल आलोचना की थी बल्कि उसके खिलाफ हमें गुलाम करने वाले ब्रिटिश साम्राज्य को भी, एक हद तक ही सही, समर्थन देने को भी तैयार हुए थे.

योगी अरविंद एक जमाने में स्वतंत्रता सेनानी रहे थे. बाद में वे गहरी अध्यात्म-साधना में डूब गए थे. लेकिन उन्होंने हिटलरी फासिज्म के खिलाफ अंग्रेजों का समर्थन ही नहीं किया था, बल्कि उन्हें मदद भी भेजी थी. इससे स्पष्ट होता है

कि फासिज्म कितनी खतरनाक शक्ति है.

सांप्रदायिक सौहार्द बिगाड़ने वाले जिस संगठन को विनोबा ने 'फासिस्ट ढंग' का कहा, उसके बारे में आगे यह भी कहा कि असत्य उनकी टेकनीक और उनकी फिलॉसफी यानी दर्शन का हिस्सा है. यह भी कहा कि 'यह सिर्फ दंगा-फसाद करने वाले उपद्रवकारियों की जमात नहीं है. यह फिलॉसफरों की जमात है. उनका एक तत्वज्ञान है और उसके अनुसार एक निश्चय के साथ वे काम करते हैं. धर्मग्रंथों के अर्थ करने की भी उनकी अपनी एक खास पद्धति है.'

1948 के सेवाग्राम सम्मेलन में ही 'सर्वोदय' शब्द सामने आया और गांधी-विचार मानने वालों की खास पहचान बन गया, हालांकि उस शब्द का प्रयोग पहले भी हुआ था. सम्मेलन के बाद विनोबा देशभर में घूमे, जगह-जगह उन्होंने 'सर्वोदय' शब्द की विवेचना की. 1949 के एक भाषण में उन्होंने सर्वोदय के बारे में जो कहा, वह आज हमारे सामने जो चुनौती उपस्थित है, उसे समझने में बहुत सहायक होती है.

सर्वोदय-दर्शन का कुल विचार समन्वय का है. सब विचारों का मेल करने और उन्हें एकत्र लाने की शक्ति सर्वोदय-विचार में है. हिंदुस्तान के संस्कार में ही समन्वय पगा हुआ है. उसकी पूर्णता सर्वोदय-विचार से हो सकती है. वैसे भी सर्वोदय का किसी से विरोध रहने का कारण नहीं. लेकिन सर्वोदय का उनसे विरोध अवश्य है, जो मानते हैं कि सबका उदय न हो, कुछ थोड़े तथा विशिष्ट लोगों का ही उदय हो. कुछ जातियां या लोग दूसरों से श्रेष्ठ हैं और उन्हीं के हाथ में सत्ता रहनी चाहिए, ऐसे मतवालों के साथ सर्वोदय का विरोध किसी भी तरह से मिट नहीं सकता. या तो सर्वोदय का विचार टिकेगा या फासिज्म का विचार टिकेगा, दोनों में इतना विरोध है. जो संप्रदायवादी हैं, जो पंथ का राज्य चाहते हैं, या किसी विशिष्ट वर्ग के वर्चस्व में जिनकी निष्ठा है, फिर वह वर्ग बहुसंख्यक हो या अल्पसंख्यक-ऐसे लोगों का विरोध सर्वोदय नहीं करेगा, तो फिर उसके होने का प्रयोजन ही क्या रहा? प्रकाश अगर अंधेरे का विरोध नहीं करेगा तो खुद को ही नष्ट करेगा. इसलिए वह विरोध अवश्य रहेगा'. विनोबा के शब्दों में यह सर्वोदय का मिशन है.

आज विनोबा का यह मिशन विशेष रूप से प्रासंगिक हो गया है. संप्रदायवाद फिर से ताकतवर हो रहा है. विनोबा ने कहा ही था कि असत्य आचरण व कथन उनके दर्शन का हिस्सा ही है. आज उनके द्वारा चारों ओर झूठ फैलाया जा रहा है. उस असत्य के खिलाफ सत्य को खड़ा करना पड़ेगा. असत्य पर सत्य ही काबू पा सकता है, असत्य या अर्धसत्य नहीं. असत्य का प्रतिवाद करना होगा और सत्य लोगों के सामने रखना होगा. हम जानते हैं कि विनोबा विचार-प्रसार पर कितना जोर देते थे. सत्य कहना भी एक बड़ा कार्यक्रम है. दरअसल वह सत्याग्रह ही है. सत्य कहना ही क्या, सत्य सोचना भी सत्याग्रह का एक तरीका है. विनोबा ने एक अनूठा शब्द प्रयोग किया

थाः निष्क्रिय चिंतनात्मक तपस्या! मूल बात तो यह है कि चिंतनात्मक तपस्या निष्क्रिय नहीं होती, भले कर्म का उसमें दर्शन न हो. 'क्रियोपरमे वीर्यवत्तरम्' यह विनोबा का ही सूत्र है.

संवाद और विचार-प्रचार की संभावना खत्म होती है, वह असंभव बना दी जाती है, तो प्रत्यक्ष सत्याग्रह का रास्ता हमारे पास है ही. गांधी दुनिया को वह बेजोड़ साधन दे गए हैं. विनोबा ने सत्याग्रह को छोड़ दिया, इस गलतफहमी का विनोबा ने बार-बार खंडन किया है. हम जानते हैं कि उनका आखिरी कार्यक्रम देवनार सत्याग्रह था.

संप्रदायवाद धर्म का गलत व संकीर्ण अर्थ करता है, इस तरफ भी विनोबा ने ध्यान दिलाया था. इसकी वजह से दुनिया में लड़ाइयां हुईं, करोड़ों को मौत के घाट उतारा गया, करोड़ों पर जुल्म और अत्याचार हुए. इसी में से आतंकवाद का जन्म हुआ है. भारत में भी इसी कारण करोड़ों को अस्पृश्यता की दलदल में धकेला गया था. 1953 में बिहार के देवघर की घटना कैसे भूली जा सकती है? विनोबा वहां के मंदिर में दर्शन करने गए थे, तब धर्म के तथाकथित रक्षकों ने उन पर हमला किया. तब उनके नारे क्या थे-'धर्म की विजय होः अधर्म का नाश हो!' वे कह रहे थे कि विनोबा जो कर रहे हैं वह अधर्म है! और एक निहत्थे संत पर आक्रमण करना धर्म था? विनोबा के बाएं कान पर उस हमले में ऐसी घातक चोट लगी कि वह कान हमेशा के लिए बेकार हो गया.

धर्म के गलत, संकीर्ण अर्थ लगाने के विरोध में आवाज उठानी पड़ेगी. हर मुल्क के, हर धर्म के लोगों को यह आवाज उठानी पड़ेगी- चाहे वे पाकिस्तान, बांग्लादेश या अफगानिस्तान के मुसलमान हों, इस्राइल के यहूदी हों, म्यांमार के बौद्ध हों या भारत के हिंदू! धर्म तो एकता के लिए है, समता और बंधुता के लिए है, मनुष्य को ऊंचा उठाने के लिए है. विनोबा ने कहा ही थाः धर्म यानी मानवता प्लस; मानवता माइनस नहीं.

दुर्भाग्य यह है कि गलत और संकीर्ण अर्थ फैलाने वाले चंद लोग होते हैं लेकिन बहुसंख्यक उसके प्रभाव में आ जाते हैं. इसलिए जब तक धर्म का वजूद है, अपने धर्म को ठीक से समझना, दूसरे धर्मों का आदरपूर्वक परिचय पाना, दूसरे सभी धर्मों के बारे में प्रेमादर रखना, यह सब तो निहायत जरूरी ही है; लेकिन जैसा विनोबा कह गए हैं कि अंततः धर्मों की चहारदीवारी लांघकर, अध्यात्म के क्षेत्र में प्रवेश करना होगा. दूसरा कोई उपाय नहीं है. यही मनुष्य के उत्क्रांति की दिशा हो सकती है.

(● विनोबा के ब्रह्मविद्या मंदिर आश्रम में, हर साल 15 नवंबर को मित्र-मिलन का आयोजन होता है. 1924 के ऐसे ही आयोजन में दिया गया व्याख्यान.)

*

विदा

रमेश बिल्लौरे : 10 मई को इंदौर में जिन रमेश बिल्लौरे का देहांत हुआ वे पर्यावरण संरक्षण के अथक सिपाही थे. बड़े बांधों से होने वाले नुकसानों का उनका अध्ययन व उनके तार्किक आलेख हमारी थाती रहेंगे. नर्मदा संघर्ष के वे चलते-फिरते दस्तावेज थे.

श्रीमती कृष्णा रावल : मध्यप्रदेश का शायद ही कोई पुराना सामाजिक कार्यकर्ता ऐसा होगा कि जो कभी शिक्षामंत्री रहे स्व. ओम प्रकाश रावल को जानता-मानता न हो; और जो भी ऐसा साथी होगा वह कृष्णा मौसी से रू-ब-रू न हुआ हो, यह भी संभव नहीं है. यह जोड़ी ताउम्र मध्यप्रदेश के सार्वजनिक जीवन को गांधी व समाजवाद का स्पर्श देती संवारती, सक्रिय बनाती रही. 90 वर्ष की उम्र में कृष्णाजी का देहांत हुआ तो एक सार्थक जीवन पूर्ण हुआ, ऐसा हम मान सकते हैं.

विजया मेहता : विजया मेहता कहूं कि विजया बाई, मराठी रंगमंच का कहीं से भी, कोई भी परिचय उनके बगैर पूरा नहीं होता है. इसी जून महीने में, 91 साल की पकी व उपलब्धियों से भरी उम्र में उन्होंने हमसे विदा ली. मराठी रंगमंच ने एक दौर में ऐसी सांस्कृतिक आंधी उठाई थी, जिसने सारे देश के रंगमंच को आंखें खोलने पर मजबूर कर दिया था. विजय तेंडुलकर, डॉ. श्रीराम लागू, अरविंद देशपांडे जैसों के साथ मिलकर विजया बाई ने इस आंधी को थामा भी था और उसे गति भी दी थी.

गैरी सोबर्स : वेस्टइंडीज के क्रिकेटर और दुनिया के सबसे प्रवीण ऑलराउंडर माने जाने वाले गैरी सोबर्स का 89 वर्ष की आयु में बारबोडास में देहांत हुआ. जब महान डोनाल्ड ब्रेडमैन कहते हों कि ''इस एक आदमी में पांच क्रिकेटर बसते हैं'', तो आप एक खिलाड़ी के रूप में सोबर्स की महानता का अंदाज कर सकते हैं. लेकिन सर सोबर्स उन कुछ चुने खिलाड़ियों में एक थे जिन्होंने खेल को मनुष्यता को उन्नत करने का उपक्रम बनाने में अविस्मरणीय भूमिका निभाई. खेल से विश्राम लेने के बाद वे क्रिकेटरों की नई पौध को खेल भावना से सींचने में लगे रहे.

टिप्पणियां

जस्टिस मुरलीधर का न्याय!

हमारी मातृ संस्था राष्ट्रीय गांधी स्मारक निधि के बोर्ड के माननीय सदस्य जस्टिस श्रीनिवासन मुरलीधर इन दिनों संयुक्त राष्ट्रसंघ मानवाधिकार आयुक्त का दायित्व निभा रहे हैं. इससे पूर्व आप दिल्ली तथा पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय के जज तथा ओडिशा उच्च न्यायालय के चीफ जस्टिस रहे. डॉ. मुरलीधर अभी 'ऑक्यूपाइड फलस्तीनी टेरिटरी' (जिसमें पूर्वी यरुशलम भी शामिल है) और इस्राइल के लिए यूनाइटेड नेशंस के स्वतंत्र अंतरराष्ट्रीय जांच आयोग के अध्यक्ष के तौर पर भी काम कर रहे हैं.

पिछले दिनों में जस्टिस मुरलीधर की अध्यक्षता वाले आयोग ने अक्टूबर 2023 में गजा पर इस्राइल के नरसंहार वाले युद्ध की शुरुआत से लेकर अक्टूबर 2025 तक फलस्तीनी बच्चों के खिलाफ इजराइल द्वारा अंतरराष्ट्रीय कानूनों के उल्लंघनों तक की जांच की और अपनी रिपोर्ट दी. रिपोर्ट का शीर्षक हैः **बचपन का मतलब ही खत्म हो गया है**! 94 पेज की यह विस्तृत रिपोर्ट बताती है कि अनुमानतः युद्ध के दौरान 44,000 से ज्यादा बच्चे घायल हुए और 58,000 बच्चे अनाथ हो गए. रिपोर्ट कहती है कि इजराइल ने युद्ध के प्रथम दो सालों में कम-से-कम 20,179 फलस्तीनी बच्चों को मार डाला. यह फलस्तीनियों की कुल मौत का लगभग 30% होता है. रिपोर्ट कहती है कि बच्चों की ऐसी व्यापक मौत के पीछे स्नाइपर्स और ड्रोनों का सटीक हमला, हर प्रकार की मानवीय सहायता की अमानवीय नाकाबंदी, मैटरनिटी और नवजात शिशु सुविधाओं को लगातार निशाना बनाना रहा है. रिपोर्ट में फलस्तीनी बच्चों, खासकर ऑक्यूपाइड वेस्ट बैंक के बच्चों के खिलाफ यौन हिंसा, मनमाने ढंग से हिरासत में लेने और यातना देने के आरोप भी दर्ज किए गए हैं. आयोग ने अपने निष्कर्ष में यह भी लिखा है कि "फलस्तीनी बच्चों को इजराइली सुरक्षा बलों द्वारा जानबूझकर निशाना बनाकर मारा गया." आयोग ने सिफारिश की कि संयुक्त राष्ट्रसंघ के सभी सदस्य देश इजराइल को हथियारों की सप्लाई रोक दें. रिपोर्ट यह भी कहती है कि इंटरनेशनल क्रिमिनल कोर्ट को सभी युद्ध अपराधियों

को गिरफ्तार करना चाहिए, जिनमें इजराइल के प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू भी शामिल हैं.

क्रूर मजाक!

माल्टा में जनमे अमरीकी कार्टूनिस्ट जो सैको ने अपने अनूठे 'कॉमिक्स जर्नलिज्म' के बूते दुनिया भर में तो लोकप्रियता हासिल की ही है, अपनी सबसे ताजा किताब 'द वंस एंड फ्यूचर रायट' के रूप में एक नई उपलब्धि भी हासिल कर ली है. लेकिन प्रकाशक ने इस किताब का वितरण रोक लिया है. यह किताब 2002 के गुजरात दंगे के बाद हुए सबसे बड़े मुजफ्फरनगर दंगे के बारे में है.

भारत में किताबों पर कभी-कभार प्रतिबंध लगाने का दुखद इतिहास रहा है. लेकिन सैको की किताब पर सरकार ने प्रतिबंध नहीं लगाया है. प्रकाशक ने ही अपनी किताब रोक ली है. उसने किताब को रोककर, किताब में कुछ संशोधन के सुझाव देते हुए पांच पेज का एक नोट सैको को भेजा था, जिसे सैको ने खारिज कर दिया. अब कई दूसरे भारतीय प्रकाशक सैको से संपर्क करने की को. शिश में जुटे हैं. सैको का कहना है कि वे चाहते हैं किताब भारतीय पाठकों तक पहुंचे.

144 पेज की इस किताब में कॉमिक्स पत्रकारिता के उस्ताद सैको ने अपने शानदार स्केचेस के माध्यम से एक जटिल कहानी कह दी है. इसे पढ़ने में दो घंटे से ज्यादा नहीं लगेंगे, बशर्ते आप उनके रेखाचित्रों से सम्मोहित न हो जाएं और चित्रों तथा चेहरों के जरिए कही गई कहानी में खो न जाएं. सैको ने 2013 के मुजफ्फरनगर दंगे की जो कहानी कही है, वह सीधी, तथ्यपूर्ण है और भारतीय पत्रकारिता में सैकड़ों नहीं तो कई बार कही जा चुकी है.

सैको ने भारत में हुए एक दंगे पर एक पूरी किताब क्यों लिखी है, जबकि बोस्निया और गजा में जनसंहार और कत्ल-ए-आम पर लिखी कृतियां उन्हें खूब प्रसिद्धि और पुरस्कार दिला चुकी हैं? जिस दंगे को वे 'छोटा' बता रहे हैं, जिसमें 42 मुसलमान और 20 हिंदू समेत कुल 62 लोग मारे गए, उसमें उनकी इतनी दिलचस्पी क्यों जगी? नई दिल्ली से मात्र डेढ़ सौ किलोमीटर दूर दंगे में 62 लोगों का मारा जाना बेशक कोई छोटी बात नहीं है.

सैको की यह समझ कैसे बनी यह तो पता नहीं कि बाबरी मस्जिद ध्वंस के बाद ही भारत में सांप्रदायिक दंगों की शुरुआत हुई! इस चूक को किनारे कर दें, तो जिस बात पर सैको ने जोर दिया है वह यह है कि किस तरह स्थानीय झगड़े दंगों का रूप ले लेते हैं. लगभग नेतृत्वविहीन और राजनीति से मुक्त भीड़ का फायदा

उठाकर सियासतदां और सिद्धांतकार भी इसमें कूद पड़ते हैं. सैको बताते हैं कि मुजफ्फरनगर में यही हुआ. वे यह भी याद दिलाते हैं कि उस समय कमान किसके हाथ में थी. तब उत्तरप्रदेश में मुलायम सिंह यादव की समाजवादी पार्टी की सरकार थी और देश की कमान यूपीए सरकार के हाथ में थी. दोनों 'सेकुलर' ताकतें! सैको बताते हैं कि मुजफ्फरनगर में छिटपुट घटनाओं को किस तरह हल्के में लिया गया, जैसे एक मुस्लिम लड़की से दुष्कर्म और उसकी हत्या की कोशिश; एक हिंदू लड़की को परेशान करने के शक में एक मुस्लिम लड़के की हत्या और बदला लेने के लिए हिंदू समूह के दो चचेरे भाइयों की हत्या; जाटों के एक जुलूस पर मुस्लिम भीड़ का हमला—ऐसी सभी घटनाओं को गंभीरता से नहीं लिया गया. सैको बताते हैं कि दो लड़कों की हत्या के मामले में पुलिस ने कई मुसलमानों को गिरफ्तार किया, जिनकी कमीजों पर खून के दाग थे. उन सभी को अगली सुबह रिहा कर दिया गया और एसएसपी तथा जिला मजिस्ट्रेट का तबादला भी कर दिया गया. सैको ने लिखा है यूपी के जाटों को यह मुसलमानों को संतुष्ट करने की कोशिश लगी होगी. सैको ने 'दि फ्यूचर रायट' (भविष्य का दंगा) शीर्षक से 17 पेज में जो निष्कर्ष दिया है, उसमें लिखा है कि दंगों ने बीजेपी को उस राज्य में 2017 और 2022 के चुनावों को जीतने में मदद की.

कोई समझदार सरकार ऐसी किताब पर प्रतिबंध नहीं लगाएगी. पिछले एक दशक में प्रकाशित दो दर्जन किताबों में ऐसी बातें पाई जाती हैं. फिर कोई बहाना बनाकर किताब को न वितरित करना लोकतंत्र के साथ क्रूर मजाक ही है.

● शेखर गुप्ता

नागरिकता का सवाल

बंगाल और बिहार में एसआईआर पर हुई तीखी बहस के बाद से ज्यादातर भारतीय इस प्रक्रिया को गहरी आशंका की नजर से देख रहे थे. ऐसे में एसआईआर का तीसरा चरण शुरू होते ही नागरिकता के प्रमाण को लेकर सरकार के विरोधाभासी बयानों ने भ्रम को और बढ़ा दिया है. हाल ही में विदेश मंत्रालय ने कहा कि 1955 के नागरिकता कानून के तहत पासपोर्ट किसी की नागरिकता का कानूनी दस्तावेज नहीं है. 1967 के पासपोर्ट एक्ट के अनुसार यह महज यात्रा का एक दस्तावेज है, जिसका उद्देश्य अंतरराष्ट्रीय यात्राओं को सुगम बनाना है.

इस बयान से हैरान लाखों देशवासियों ने सोशल मीडिया पर अपनी नाराजगी और अविश्वास जताते हुए सरकार से यह स्पष्ट करने की मांग की कि यदि पासपोर्ट नहीं, तो कौन-सा दस्तावेज नागरिकता का निर्णायक प्रमाण है? चुनाव आयोग के अधिकारियों ने एक समाचार एजेंसी से कहा कि पासपोर्ट उन

12 सहायक दस्तावेजों में शामिल रहेगा, जिन्हें वोटर एसआईआर प्रक्रिया के दौरान मतदाता सूची में शामिल होने के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं.

जब विदेश मंत्रालय कह चुका है कि पासपोर्ट नागरिकता का 'निर्णायक और स्वतंत्र प्रमाण' नहीं है, तो फिर चुनाव आयोग मतदाता सूची में नाम दर्ज कराने के लिए इसे कैसे स्वीकार सकता है? पासपोर्ट-धारक यह सोचकर परेशान हैं कि आखिर उस बुकलेट की क्या कीमत है, जिसे वे लंबे समय से अपनी भारतीय नागरिकता का अंतिम प्रमाण मानते रहे थे? गृह मंत्रलय चुप्पी साधे बैठा है.

नागरिकता एक कानूनी विषय है. लेकिन कानून की बारीकियों से परे, यह उन अनेक दस्तावेजों पर जनता के भरोसे का सवाल भी है, जिन्हें हम भारतीय होने के नाते अपने पास रखते हैं. वर्षों से पासपोर्ट-धारक भरोसा करते रहे कि नेवी ब्लू रंग की यह छोटी-सी बुकलेट उनकी नागरिकता का निर्णायक प्रमाण है. आखिरकार, सरकार भी यह बुकलेट तभी जारी करती है, जब वह पूरी तरह संतुष्ट हो जाती है कि आवेदक भारतीय नागरिक है और पासपोर्ट रखने का पात्र है. इसके लिए पुलिस सत्यापन भी किया जाता है. लेकिन भारतीय राज्य पर हमारा यह भरोसा शायद गलत था.

पैन कार्ड टैक्सेशन के लिए है. ड्राइविंग लाइसेंस वाहन चलाने की अनुमति देता है. आधार कार्ड पहचान और निवास का प्रमाण है, जो बैंक खाता खोलने के लिए जरूरी है. इसे पैन कार्ड से भी लिंक करना पड़ता है, ताकि हम टैक्स चुका सकें. हम यह भी जानते हैं कि वोटर आईडी कार्ड से हम वोट दे सकते हैं. वैसे ही हम हमेशा यह सोचते रहे कि पासपोर्ट देश-विदेश में नागरिकता का प्रमाण है. यदि ऐसा नहीं है, तो नागरिकता सिद्ध करने वाला दस्तावेज कौन-सा है?

2019 में सरकार की ओर से जारी प्रेस रिलीज में भी कहा गया कि 'जन्म तिथि और जन्मस्थान से संबंधित कोई भी दस्तावेज पेश करके नागरिकता सिद्ध की जा सकती है. ऐसे दस्तावेज कौन-कौन से हैं? जब सरकार ही ऐसे दस्तावेज को लेकर भ्रम में है, तो फिर हम किसकी ओर देखें? समस्या नागरिक पंजीयन व्यवस्था में भी है. लाखों भारतीयों के पास जन्म प्रमाणपत्र नहीं है, क्योंकि जन्म पंजीकरण 1970 के बाद अनिवार्य हुआ था. इसके अलावा स्कूल प्रमाणपत्र, जमीन संबंधी दस्तावेज, मतदाता सूची में भी लोगों के नाम अक्सर अलग-अलग होते हैं.' ऐसी विसंगतियां बड़ी कठिनाइयां पैदा करती हैं और राज्य गूंगा बनकर बैठा है.

● **आरती जेरथ**

पत्र

गांधी-मार्ग के जनवरी–फरवरी 2026 अंक का संपादकीय वैश्विक स्थितियों को लेकर जो बात कहता है, काश कि हमारी विदेश-नीति के निर्माता भी उसे पढ़ते! एक लोकतांत्रिक राष्ट्र के रूप में भारत की प्रतिबद्धता कैसी होनी चाहिए, इसका खाका बताता है आपका संपादकीय. सुशोभित ने 'राजघाट मत जाना' में जो कहा है, उसे मैं खुद अनुभव कर चुकी हूं. वहां गांधी की समाधि जैसे सेना की छावनी है; बिरला हाउस में किसी हद तक गांधी की सहजता मिलती है. पत्रिका खोलते ही एक छोटे बच्चे के साथ दौड़ रहे गांधीजी का चित्र और उसके साथ लिखी पंक्तिः वर्तमान को समझिए... भविष्य को बनाइए... मैं कितनी बार वहां ठिठकती हूं! वर्तमान व भविष्य के बीच पुल बनाते गांधी को हम कब समझेंगे?

● बुद्धि पटेल, जोधपुर (राजस्थान)

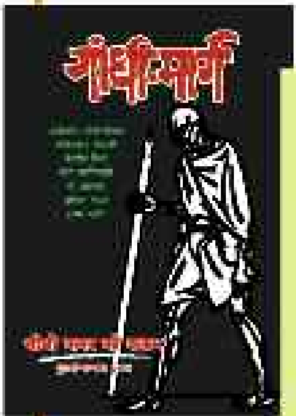
गांधी–मार्ग का अद्यतन अंक (मई-जून 2026) पढ़कर कई पुरानी यादों का स्मरण स्वाभाविक ही है. देश के लोकतंत्र की और सामयिक परिस्थिति तथा अंधी प्राथमिकताओं से दुखी होना और उन पर अपनी राय निडर होकर रखना आज की अनिवार्यता है. इस अंक ने इस अनिवार्यता को पूरा किया है. यदि किसी प्रकार की शक्ति है कहीं तो उस सनातन शक्ति की शक्ति से मैं प्रार्थना करता हूं कि असभ्य सोच को सभ्य सोच की शक्ति प्रदान करे. अंक के सभी लेख सारगर्भित एवं तथ्यात्मक हैं. ऐसी बेबाकी के लिए संपादक महोदय को धन्यवाद!

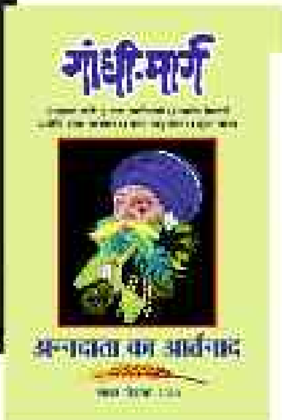
● डॉ. अवध प्रसाद, जयपुर (राजस्थान)

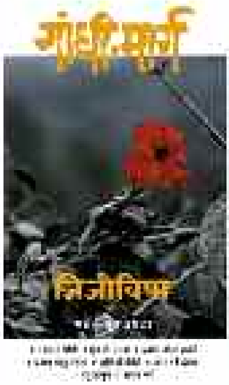
युद्ध और गांधी (मार्च-अप्रैल) का विषय इस तरह भी उठाया जा सकता है जिसमें गांधी भी हों, हिटलर भी, चार्ली चौप्लिन भी हों और पोप भी, दलाई लामा भी और बिल क्लिंटन भी हों और जैनेंद्र कुमार भी, यह आपकी ही करामात हो सकती है. मुझे यह भी लिखना चाहिए कि आपका अपना आलेख इस अंक की आत्मा है. युद्ध मात्र बुरा नहीं है. आप उसे क्यों व कैसे लड़ रहे हैं, यह बात देखने व समझने की है. अहिंसक लड़ाई भी युद्ध से कम होती है क्या? इस अंक ने हमारी समझ को छुआ है. आपको साधुवाद!

● कैलाश, हटिया (झारखंड)

न कभी गांधी पुराने होते हैं,
न कभी गांधी-मार्ग पुराना होता है!









पुराने पड़ जाने से बचिए-
गांधी-मार्ग नियमित पढ़िए!

आज ही गांधी-मार्ग के नियमित पाठक बनिए

'गांधी-मार्ग' की शुल्क तालिका

वार्षिक शुल्क भारत में एक वर्ष के लिए 200 रुपये

दो वर्ष के लिए 350 रुपये

आजीवन 1000 रुपये (व्यक्तिगत),

आजीवन 2000 रुपये (संस्थागत)।

गांधी शांति प्रतिष्ठान के नाम चेक भेजें अथवा ऑनलाइन भुगतान करें।

ऑनलाईन भुगतान का विवरण
गांधी पीस फाउंडेशन
बैंक का नाम : केनरा बैंक, डी.डी.यू. मार्ग, नई दिल्ली-2
खाता न. : **0158101030392**
आई.एफ.एस.सी. कोड: **CNRB0000158**

रजिस्टर्ड नं. 4545/57

